मीरा
प्रेम दीवानी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

मीरा प्रेम दीवानी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

मीरा : प्रेम दीवानी

वीरेन्द्र सेठी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

प्रकाशक:
जगदीश चन्द्र सेठी, सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास
डेरा बाबा जैमल सिंह
पंजाब 143 204

© 1980, 2001 राधास्वामी सत्संग ब्यास
सर्वाधिकार सुरक्षित पहला संस्करण 1980

सोलहवाँ संस्करण 2001

मुद्रक: लक्ष्मी ऑफ़सेट प्रिन्टर्स

Published by:
Jagdish Chander Sethi, Secretary
Radha Soami Satsang Beas
Dera Baba Jaimal Singh
Punjab 143 204

© 1980, 2001 Radha Soami Satsang Beas
All rights reserved First edition 1980

Sixteenth edition 2001

11 10 09 08 8 7 6 5 4 3

ISBN 978-81-8256-265-3

Printed in India by: Lakshmi Offset Printers

अनुक्रमणिका

प्रकाशक की ओर से 9

मीरा बाई का जीवन 13

मीरा बाई का सन्देश 45

मीरा बाई के कुछ संकलित पद 73

प्रभु मुझे पार उतार	73	घट का दर्पण	87
उलाहना	73	प्रेम का उलाहना	88
निवेदन	74	जो मैं साहिब पाऊँ	89
विरह-वेदना	74	और देव न जानूँ	89
हरि से मिलाप कैसे हो?	75	तेरी शरण पड़ी	90
ज्योति में ज्योति मिली	76	लागी लगन	90
निद्रा-विहीन रातें	77	जो घन के घाव सहे	91
नाम का सुमिरन	77	प्रेम में पागल	92
पचरंग चोला	78	प्रेम का अंकुर	94
दिन थोड़ा रे	79	हंसा चुगत जुवार	95
अलौकिक खिलौना	80	संसार की असारता	95
सन्तों हाथ बिकानी	81	गुरु-चरणों की महिमा	96
जोगी अजहूँ आयो नाहिं	82	लगन नहीं छूटे	97
दृढ़ निश्चय	84	फेर न मैला होय	98
मैं प्रभु पाया जी	84	शरण	98
सूरमा	85	जन्म-मरण के साथी	99
प्रभु तू रुष्ट क्यों है?	86	लीनो गोविन्द मोल	100
विरह-वेदना	87	बेगि मिलो आई	101

अविनाशी वर	101	नाम से नेह	125
चरख़ा	102	गुरु-पद-रज की प्यासी	126
सतगुरु की कृपा	104	विरह-बाण	126
सोनैं काट न लागै	104	सतगुरु की शरण	128
दरद न जाने कोय	105	प्रभु राख लई है	128
छोड़ मत जाना	106	बाने का बिरद	129
अनमोल अवसर	107	सूरत देख लुभानी	130
हुआ समुद्र से मेल	108	व्याकुल मीरा	130
मगन होय मीरा चली	109	प्रभु का वरण	131
राम खुमारी	110	बिछुरत प्राण तजे	132
मुझे लगन लगी	110	भक्ति की दृढ़ता	133
दूसरा न कोई	111	नाम-रस	134
दीया बिन अँधेरा	112	शब्द सरोवर धँसी	134
सत्संग का रस	113	नाम मन बसिया	135
दर्शन दीजो जी	114	बैरन नींद	135
विरह-व्यथा	115	कंगन	136
कुँवारी क्यों रही	115	इस काया में	137
नाम-रतन धन	117	वेग पधारो	138
मैं अपना घर जानी	117	बैरागिन	139
भक्ति करे कोई सूरमा	118	मन माने जब तार	139
प्रतीक्षा	119	आज प्रभु मेरे घर रे	140
चितवो मेरी ओर	120	सोने में सुहागा	141
पानी में मीन प्यासी	120	तोही से लागो नेह	141
हरि है हृदय माहिं	121	जब भई ख़ाक बराबर	142
हरि-भजन की वेला	122	प्रियतम का समाचार	143
होली	123	नैना रस पीजै	144
नयनों पर बलिहारी	123	वृक्ष की टेव	145
मनुष्य-जन्म	124	प्रभु हाथ बिकानी	145

व्यर्थ के धन्धे 146
दीवानी मीरा 147
ज्योति में ज्योति मिली 147

सन्दर्भ-सूची *149*
सन्दर्भ-ग्रन्थ *153*
शब्दानुक्रमणिका *155*

प्रकाशक की ओर से

भारत के भक्त-कवियों में लोकप्रियता की दृष्टि से मीरा बाई का स्थान बहुत ऊँचा है। राज-परिवार में उनका जन्म और पालन-पोषण हुआ, मेवाड़ के राज-घराने में उनका विवाह हुआ, परन्तु समस्त सांसारिक ऐश्वर्य को तुच्छ मानते हुए उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भक्ति में अर्पित कर दिया। लोक-निन्दा, अपमान, कष्ट और यहाँ तक कि प्राण लेने की चेष्टाएँ भी उन्हें प्रभु-प्रेम के मार्ग से डिगा न सकीं।

प्रभु तथा गुरु के प्रति मीरा बाई का प्रेम उनके पदों में सजीव हो उठा है। उनके प्रेम और विरह के स्वर पिछली चार सदियों से घर-घर में गूँज रहे हैं। अपने पदों में मीरा बाई जो गाती हैं वह प्रत्येक भक्त का अपना गीत है, उसकी आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। परमात्मा के वियोग के अन्त के लिए, दो से एक होने के लिए, प्रियतम में समाकर उसका रूप हो जाने के लिए यह आत्मा की एक व्याकुल पुकार है। इन पदों के भाव आज भी उतने ही मर्म-स्पर्शी हैं जितने उस समय थे जब मीरा बाई ने अपनी तन्मयता में उन्हें पहली बार स्वरबद्ध किया था।

'मीरा: प्रेम दीवानी' में संकलित पद अनुमानतः वे हैं जो मीरा बाई ने सन्त रविदास जी के सम्पर्क में आने के उपरान्त रचे हैं और जो एक ऊँची आध्यात्मिक अनुभूति प्रकट करते हैं। इन पदों में सन्तों की उस शिक्षा की स्पष्ट झलक मिलती है जो कबीर साहिब, गुरु नानक देव जी, रविदास जी, पलटू साहिब आदि सन्तों ने समय-समय पर दी है। सभी सन्त मनुष्य को यही प्रेरणा देते हैं कि परमात्मा की खोज अपने शरीर रूपी हरि-मन्दिर में ही करनी चाहिए, क्योंकि यही उसका सच्चा निवास-स्थान है और यहीं वह मिलेगा। परन्तु अन्तर में जाने का मार्ग केवल किसी पूर्ण गुरु से ही प्राप्त हो सकता है और केवल पूर्ण गुरु ही मनुष्य को अन्तर में नाम अथवा शब्द से

जोड़कर आन्तरिक रूहानी मण्डलों की यात्रा करवाते हुए अपने निज-धाम ले जा सकते हैं। मीरा बाई के ऐसे अनेक पद हैं जिनसे उनके सन्देश की अन्य सन्तों के सन्देश के साथ समानता स्पष्ट प्रकट होती है।

प्रस्तुत पुस्तक अंग्रेज़ी 'मीरा—दि डिवाइन लवर' का हिन्दी अनुवाद है। इसमें मीरा बाई पर प्राप्त साहित्य, शोध ग्रन्थों, इतिहास तथा मौखिक परम्पराओं से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उनकी जीवन-गाथा को तथा उनके कुछ चुने हुए पदों के आधार पर उनके सन्देश को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद सरस तथा भावपूर्ण भाषा में किया गया है। आशा है, मूल अंग्रेज़ी पुस्तक की भाँति ही 'मीरा: प्रेम दीवानी' अध्यात्म-प्रेमी पाठकों को पसन्द आयेगी।

डेरा बाबा जैमल सिंह
अमृतसर (पंजाब)
मई, 1980

एस. एल. सोंधी,
सेक्रेटरी,
राधास्वामी सत्संग ब्यास

जीवन

मीरा बाई का जीवन

मीरा बाई के व्यक्तित्व और चरित्र के प्रभाव को उनका समकालीन समाज ग्रहण न कर सका। जिस राज-परिवार में उनका विवाह हुआ वह मीरा बाई को हमेशा अपने कुल का एक कलंक ही मानता रहा और राजस्थान के तत्कालीन इतिहासकारों ने उनके नाम का केवल साधारण-सा उल्लेख ही किया है। चारण और भाटों ने, जो केवल राजाओं और योद्धाओं का ही यशोगान करते रहे, अपने गीतों में मीरा बाई का ज़िक्र तक नहीं किया है।

राजस्थान के दो शक्तिशाली राज-परिवारों से—जन्म से मेड़ता और विवाह के द्वारा मेवाड़—सम्बन्धित होते हुए भी मीरा बाई इतिहास की दृष्टि में ओझल ही रहीं, मानों उनके भाग्य में विस्मृति के गर्भ में समा जाना ही लिखा हो।

परन्तु मीरा बाई आसानी से भुलायी न जा सकीं। उनकी भक्ति, उनकी निष्ठा और दृढ़ता, प्रभु-प्रेम में समर्पित उनका जीवन, समय के पथ पर एक अमिट छाप छोड़ गये हैं। साढ़े चार सौ वर्ष बाद भी आज मीरा बाई भारतीय संस्कृति और साहित्य के आकाश में एक उज्ज्वल नक्षत्र के समान जगमगा रही हैं और उनका प्रकाश समय के साथ बढ़ता ही जा रहा है। इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित होने पर भी वे अपने चित्ताकर्षक गीतों द्वारा जन-साधारण के हृदय में जीवित रहीं, उन गीतों द्वारा जिनकी प्रेरणा और लोकप्रियता आज तक भी कम नहीं हुई है। उस समय के राजा-महाराजा आज केवल इतिहास के पृष्ठों में ही रह गये हैं, परन्तु समय के साथ मीरा बाई की महिमा और लोकप्रियता बढ़ती गयी और आज वे अपने समय की सबसे भावपूर्ण और प्रभावशाली कवयित्री मानी जाती हैं।

मीरा बाई के जीवन पर अनेक आधुनिक विद्वानों ने खोज की है। परन्तु लगभग सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि उनके जीवन की विस्तृत जानकारी

नहीं मिलती और उनके जीवन के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। उनके जीवन के विषय में प्रमुख स्रोत इस प्रकार हैं: 1. मीरा बाई के अपने आत्म-कथात्मक पद, 2. मीरा बाई के बाद आनेवाले भक्तों और कवियों की रचनाएँ और 3. पिछले डेढ़ सौ वर्षों में विद्वानों द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष।

1. मीरा बाई के पद उनकी आन्तरिक भावनाओं की अनायास अभिव्यक्ति हैं, जो उन्होंने अपने जीवन में मुक्त-गीतों के रूप में गाये; परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वे उनके जीवन-काल में ही लिपिबद्ध कर दिये गये। उनके गीतों के संकलन की कई पाण्डुलिपियाँ राजस्थान और गुजरात में मिलती हैं किन्तु ये संकलन उनकी मृत्यु के पचास से सौ वर्ष बाद किये गये हैं।

2. मीरा बाई के बाद के भक्तों और कवियों ने जो कुछ लिखा है वह उनके जीवन से जुड़े हुए चमत्कारों तक ही सीमित है तथा उनमें उनके जीवन का ऐतिहासिक विवरण नहीं है।

3. मीरा बाई के विषय में इतिहास के नतीजे बहुत कुछ अनुमान और अन्दाज़ की सूक्ष्म कगार पर चल रहे हैं।

इस प्रकार जो उनकी जीवन-गाथा हमें मिलती है वह परम्परा और लोक-कथाओं पर आधारित है जिसे आधुनिक विद्वानों ने इतिहास की चौखट में जड़ने का प्रयास किया है।

मीरा बाई का जन्म सन् 1498 में कुड़की ग्राम में हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म बाजोली में हुआ। वे रतन सिंह की पुत्री और मेड़ता-नरेश राव दूदा की पौत्री थीं। मेड़ता उस समय राजस्थान का एक स्वतन्त्र और शक्तिशाली राज्य था। उनके पिता, राव दूदा के छोटे बेटों में से एक थे और इसलिए मेड़ता में वह केवल बारह छोटे शहरों और ग्रामों के सरदार थे। वे जब केवल दो वर्ष की थीं, उनकी माता जी की मृत्यु हो गयी, इसलिए राव दूदा उनको मेड़ता ले आये और अपनी देख-रेख में उनका पालन-पोषण किया। राव दूदा एक योद्धा होने के साथ ही भक्त-हृदय व्यक्ति भी थे और साधु-महात्मा उनके महल में बराबर आते रहते थे। इस

प्रकार मीरा बाई बचपन से ही धार्मिक व्यक्तियों के सम्पर्क में आती रहीं और उनका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर हो गया। उस समय के राजवंशों की परम्परा के अनुसार उनको वेद, पुराण आदि धर्म-ग्रन्थों तथा संगीत, कताई और सिलाई की शिक्षा के साथ ही तीर, तलवार आदि शस्त्र-चालन और घुड़सवारी तथा रथ चलाने की भी शिक्षा दी गयी। इस प्रकार मीरा बाई को घरेलू और पारिवारिक कार्य के साथ ही युद्ध-काल में शस्त्र-संचालन की योग्यता भी प्राप्त हो गयी। धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन से उन्हें एक उदार दृष्टिकोण प्राप्त हुआ और शस्त्र-चालन की शिक्षा ने उन्हें साहस और दृढ़ निश्चय प्रदान किया। वे मृदुभाषी और सहृदय थीं और जन्म से ही उनकी आवाज़ मीठी और सरस थी। कहा जाता है कि इन गुणों के साथ-साथ वे अत्यन्त आकर्षक और रूपवती भी थीं।

मीरा बाई के अद्वितीय रूप और गुणों की चर्चा सुनकर मेवाड़-नरेश राणा संग्राम सिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र युवराज भोजराज के लिए, उनके दादा राव दूदा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। सगाई धूम-धाम से की गयी और चित्तौड़ तथा मेड़ता दोनों स्थानों में बड़ी ख़ुशियाँ मनायी गयीं। परन्तु राव दूदा, जिन्होंने मीरा बाई को बचपन से पाला था और जो उनके लिए एक प्रकार के पिता और माता दोनों ही थे, विवाह तक जीवित न रह सके। सगाई के कुछ ही महीनों के अन्दर उनकी मृत्यु हो गयी। मीरा बाई अपने पितामह को बहुत चाहती थीं और उनकी मृत्यु उनके जीवन में पहला बड़ा आघात था।

मीरा बाई के चाचा राव वीरम देव ने, जिनका उनके प्रति बहुत स्नेह था, उनका विवाह सन् 1516 में बड़े उत्साह और समारोह के साथ सम्पन्न किया। इस समय उनकी आयु अठारह वर्ष की थी। विवाह में पूरे मेड़ता शहर को एक दुलहन की तरह सजाया गया। राणा साँगा बारात लेकर आये जिसमें अनेक नरेश, सामन्त और योद्धा भी शामिल थे। मीरा बाई जैसी रूप और गुण-सम्पन्न पुत्र-वधू को पाकर जो मेवाड़ की भावी महारानी बनने के पूर्णतया योग्य थीं, राणा साँगा बहुत प्रसन्न हुए। विवाह के समय मीरा बाई के चाचा राव वीरम देव ने उनको दहेज में वस्त्र व आभूषण आदि के

अतिरिक्त कई गाँव भी दिये। राणा साँगा ने नववधू को बड़े स्नेह के साथ अपनाया और उसे बहुमूल्य वस्त्र और अलंकार दिये तथा कई ग्रामों की आय भी उनके नाम कर दी।* [1]

मीरा बाई के पति युवराज भोजराज एक सुन्दर प्रभावशाली युवक थे और कई युद्धों में अपनी वीरता के लिए यश प्राप्त कर चुके थे। अनुमान है कि उनका दाम्पत्य-जीवन सुखी था और ससुराल में उनको समुचित आदर और स्नेह मिला परन्तु ये सुख अल्पकालीन ही रहे। विवाह के लगभग दस साल के बाद सन् 1525-26 में हुए युद्ध में युवराज भोजराज का देहान्त हो गया।† मीरा बाई के लिए यह एक मार्मिक आघात था। राणा साँगा ने उन्हें मेवाड़ की रानी बनाने के लिए चुना था, परन्तु भाग्य को कुछ और ही मंज़ूर था।

पति की मृत्यु के छः महीने बाद मीरा बाई को दो और सदमे पहुँचे। सन् 1527 में खानवा की लड़ाई में राणा साँगा की ओर से बाबर से लड़ते हुए उनके पिता का स्वर्गवास हो गया और राणा साँगा, जिन्होंने मीरा बाई के जीवन में उनके दादा राव दूदा का स्थान ले लिया था, लड़ाई में सख़्त घायल हुए तथा कुछ महीनों के अन्दर ही कुछ षड्यन्त्रकारी सामन्तों ने उन्हें ज़हर देकर मार डाला।

एक के बाद एक आनेवाली इन दुर्घटनाओं से मीरा बाई को बहुत आघात पहुँचा। उन्हें संसार की असारता का आभास होने लगा। उनकी स्वाभाविक भक्ति-भावना जाग्रत हो उठी और उनका झुकाव अन्तर की ओर होने लगा। उनके कुछ पदों में मानसिक विरक्ति की यह भावना प्रकट होती है:

> कोन करे जंजाल, जग में जीवन थोरो॥
> जूठी रे काया ने जूठी रे माया, जूठो सब संसार॥[2]

---

* पु. हरिनारायण शर्मा (जयपुर) की खोज के अनुसार मीरा बाई को तीन लाख रुपये प्रति वर्ष की जागीर दी गयी। कहते हैं कि मीरा बाई जब तक मेवाड़ में रहीं, यही वार्षिक आय प्राप्त करती रहीं तथा उसका अधिकांश वे दीनों, अनाथों तथा अपने यहाँ आनेवाले भक्तों पर ख़र्च करती रहीं।

† कुछ विद्वानों के अनुसार मीरा बाई के पति युवराज भोजराज की मृत्यु विवाह के छः वर्ष बाद 1522 में हुई।

अपने बचपन और युवावस्था में मीरा बाई भगवान् कृष्ण की उपासिका थीं। उनकी यह भक्ति और प्रेम गहरा और परिपक्व होने लगा और अब उनके लिए श्रीकृष्ण अथवा गिरधर नागर कोई अवतार न रहकर अविनाशी प्रभु परमपिता परमात्मा से अभिन्न हो गये।

मीरा बाई के जीवन में किसी समय एक ऐसी घटना हुई जिसने उनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण को बिल्कुल बदल दिया। वे सन्त रविदास के सम्पर्क में आयीं जो आजीविका के लिए जूते गाँठने का काम करते थे। मीरा बाई ने उनसे सुरत-शब्द-योग की दीक्षा प्राप्त की। अपने गुरु की कृपा से उनकी जन्म-जात भक्ति-भावना को एक नयी दिशा मिली। उनका प्रभु-प्रेम एक निजी अनुभव के रूप में साकार हो उठा। बाहरमुखी क्रियाएँ, पूजा-पाठ आदि जो बचपन से उनके जीवन के अभिन्न अंग थे, धीरे-धीरे उनके लिए महत्त्वहीन होने लगे।

मीरा बाई के गुरु कौन थे? इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। नाभादास ने अपनी भक्तमाल में सन्त रविदास को रामानन्द जी(1299-1410)* का शिष्य बताया है। परन्तु भक्तमाल में केवल एक पद है जिसमें रामानन्द जी के बारह शिष्यों के नाम दिये गये हैं जिनमें रविदास जी का नाम भी है। इस पद के आधार पर कुछ विद्वानों ने रविदास जी का समय चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य तक माना है और इसी आधार पर वे रविदास जी को मीरा बाई के गुरु नहीं मानते। परन्तु उसी पद में नाभादास ने रामानन्द जी के कुछ अन्य शिष्यों के नाम दिये हैं जो आधुनिक विद्वानों के अनुसार उनके समकालीन नहीं थे। सन्त-परम्परा के अनुसार रविदास अथवा रैदास जी, कबीर साहिब (1398-1518) के शिष्य थे और उन्होंने 118 वर्ष की आयु पायी। कुछ परम्पराओं के अनुसार रविदास जी का जीवन-काल सन् 1414 से 1532 तक था, जब कि कुछ अन्य अनुश्रुतियों

---

* रामानन्द जी के जीवन-काल के विषय में विद्वानों में काफ़ी मतभेद हैं। विभिन्न विद्वानों ने उनके समय के 1328-1448, 1366-1467, 1299-1410 आदि अलग-अलग वर्ष बताये हैं।

के अनुसार उनका समय सन् 1434 से 1552 तक था।* गुरु रविदास के जीवन पर विद्वान अब भी खोज कर रहे हैं। फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे मीरा बाई के जीवन के प्रथम 34 अथवा 42 वर्षों तक उनके समकालीन थे।

कुछ लोगों का यह कथन कि मीरा बाई के कोई गुरु नहीं थे, सही नहीं लगता। उन्होंने अपने कई पदों में परमात्मा की प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है। उनके अनुसार सन्त अथवा सतगुरु मुक्ति-द्वार के द्वारपाल होते हैं और इस द्वार को खोलने की चाबी उन्हीं के हाथ में है।† प्रभु-प्रेम की कुंजी द्वारा वे ताला खोलकर आत्मा को सदा के लिए मुक्त कर देते हैं।[5] मीरा बाई कहती हैं:

हरि बिना रह्यो न जाय, गुरां बिना तरियो न जाय।[6]

बिना प्रभु से मिले मैं जीवित नहीं रह सकती; परन्तु बिना सतगुरु के वह प्राप्त नहीं हो सकता।

मनुष्य-जन्म को परमात्मा से प्रेम करने और उसे प्राप्त करने का अनमोल अवसर बताते हुए वे कहती हैं कि प्रभु-भक्ति की सही रीति केवल उसी

---

* हाल ही में कुछ विद्वान इस निष्कर्ष पर पहँचे हैं कि रविदास जी का जन्म-स्थान सीर गोबरधनपुर नामक ग्राम है जो बनारस से लगा हुआ है। 1971 में गुरु रविदास का स्मारक मन्दिर बनाया गया जिसका उद्घाटन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उप-कुलपति ने किया। यहाँ प्राप्त एक प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपि में रविदास जी का समय 1414 से 1540 दिया गया है।

† अन्य सन्तों ने भी कहा है कि गुरु के हाथ में ही मुक्ति-द्वार की कुंजी है। आदि ग्रन्थ में गुरु साहिब कहते हैं कि अन्तर में जाने की कुंजी सतगुरु के हाथ में है, किसी और से वह द्वार खुल नहीं सकता। ऐसा गुरु श्रेष्ठ भाग्य हो तो मिलता है। ... जिस (प्रभु) का यह घर है उसने इस पर ताला लगाकर कुंजी गुरु के सुपुर्द कर दी है। मनुष्य चाहे कितने ही उपाय करे, सतगुरु की शरण लिये बिना प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता:

सतिगुर हथि कुंजी होरतु दरु खुलै नाही गुरु पूरै भागि मिलावणिआ॥[3]

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई॥
अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई॥[4]

व्यक्ति से प्राप्त हो सकती है जो स्वयं भक्ति की पूर्णता को प्राप्त कर चुका हो। ऐसा पूर्ण पुरुष अथवा गुरु ही प्रभु-प्राप्ति के मार्ग का भेद औरों को भी प्रदान कर सकता है। केवल वही उस अगम और अलख धाम का विवरण दे सकता है।[7]

मीरा बाई ने कुछ पदों में अपने गुरु रविदास का उल्लेख किया है। अपने पिता और पति के परिवारों के उज्ज्वल नाम को कलंकित करने के आरोप का उत्तर देते हुए वे कहती हैं कि न तो मैं अपने पीहर की हूँ, न ही ससुराल की। मुझे तो सन्त रविदास के रूप में गुरु प्राप्त हो गये हैं और उनके द्वारा प्रभु से मिलाप हो गया है:

> नहिं मैं पीहर सासरे, नहिं पियाजी री साथ।
> मीराँ ने गोविन्द मिल्या जी, गुरु मिलिया रैदास॥[8]

मुझे रविदास जी जैसे सन्त, गुरु के रूप में मिल गये हैं, मैं उनके दिये हुए नाम को कभी नहीं छोड़ूंगी 'गुरू मिल्या म्हाने रैदास नाम नहीं छोड़ूँ॥'[9]

केवल सन्त रविदास की कृपा द्वारा ही मीरा बाई को अपने आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति हो सकी। वे कहती हैं कि मैं प्रभु के धाम का पता खोजती हुई भटकती रही, परन्तु कोई उसका भेद न दे सका। जब अपने सतगुरु सन्त रविदास से मेरा मिलाप हुआ तो उन्होंने मेरी सुरत अथवा आत्मा को प्रभु की पहचान या निशानी प्रदान की तब मेरी आत्मा रूहानी मण्डलों में जाकर अपने प्रियतम से मिल सकी और मेरी व्यथा की अग्नि बुझ सकी:

> खोजत फिरूं भेद वा घर को, कोई न करत बखानी॥
> रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु, दीन्हीं सुरत सहदानी॥
> मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी॥[10]

इसी प्रकार एक अन्य पद में वे कहती हैं कि जब मुझे अपने पूरे गुरु रैदास मिले तो धुर-धाम रूपी वृक्ष से निकली हुई क़लम अथवा टहनी वापस जाकर अपने मूल से जुड़ गयी। जब मेरे सतगुरु ने आकर मुझे रूहानी मार्ग का भेद प्रदान किया तो मेरी ज्योति उस परम ज्योति से मिलकर एक हो गयी:

गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम भिड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आ के, जोत में जोत रली॥[11]

मनुष्य-जन्म के असली उद्देश्य—प्रभु-प्राप्ति की पूर्ति के लिए कटिबद्ध मीरा बाई ने भक्ति के मार्ग को पूरी लगन के साथ अपना लिया। अपने अभ्यास के द्वारा उन्हें आन्तरिक अनुभव प्राप्त हुए जिनके फलस्वरूप उनका विश्वास दृढ़ हो गया और उनका मन और उनकी आत्मा प्रेम के कभी न छूटनेवाले रंग में रँग गये। प्रेम की चिनगारी अब एक उज्ज्वल लौ के रूप में प्रज्वलित हो गयी। उनके ही शब्दों में जब शुरू में वे प्रभु के प्रेम के मार्ग पर चलीं तो किसी ने उन्हें न रोका, अब उनका प्रेम विकसित हो उठा है जैसे वट या बरगद का छोटा-सा बीज समय पाकर विशाल वृक्ष का रूप ले लेता है:

गोविन्द सूँ प्रीत करत, तबहि क्यों न हट की।
अब तो बात फैल परी, जैसे बीज बट की॥[12]

भक्ति और प्रेम के इस विकास के साथ ही मीरा बाई के जीवन में परीक्षा और विपत्तियों का दौर भी शुरू हो गया। परम्परा और परिपाटियों के विरुद्ध उनकी प्रभु-भक्ति, उनका धार्मिक मान्यताओं और रूढ़ियों के विपरीत आचरण, साधु-सन्तों के साथ निरन्तर उठना-बैठना और अपने गुरु सन्त रविदास की भक्ति और वन्दना ने पण्डितों, पुरोहितों और चित्तौड़ राज-दरबार के कट्टरपंथियों के कोप को भड़का दिया। उन्होंने उनकी आलोचना और निन्दा करनी शुरू कर दी। मेवाड़ के राणा और उनका राज-परिवार जो सदा से परम्पराओं का भक्त, जाति-भेद का पोषक और ऊँची जातियों की उच्चता का समर्थक था, जो अपनी जटिल रूढ़ियों के साथ इतना बँधा हुआ था कि अपने राजवंश की महिलाओं का और लोगों के साथ मिलना-जुलना पसन्द न करता था और जो अपनी प्रतिष्ठा के गर्व* में डूबा रहता था, वह इस

---

* मेवाड़ के राणाओं की यह प्रतिष्ठा सम्बन्धी परम्परा इतनी जटिल थी कि वे किसी साधारण नागरिक से सीधे बात न करते थे। जब भी कोई बात करनी होती तो सारा वार्तालाप किसी मध्यस्थ व्यक्ति की मारफ़त किया जाता था।

बात को सहन न कर सका कि राज-परिवार की एक बहू साधारण लोगों से मिले-जुले और एक ऐसे महात्मा को गुरु माने जो व्यवसाय से जूते गाँठने का कार्य करते थे। उच्च वर्ण के कट्टरपंथी लोग, राज-परिवार और सामन्त आदि मीरा बाई की कटु आलोचना करने लगे। उनके आक्रोश और निन्दापूर्ण वचनों का जब उन पर कोई असर न हुआ तो उन्होंने उनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने और राणा के कान भरने शुरू कर दिये।

राणा साँगा, जो मीरा बाई को समझ सकते थे, जो उनको स्नेह और सहानुभूति दे सकते थे, 1527 में स्वर्ग सिधार चुके थे। मेवाड़ के नये शासक राणा रतन सिंह जो मीरा बाई के देवर थे, कमज़ोर और अस्थिर स्वभाव के थे। उनमें अपने पिता राणा साँगा की वीरता, बुद्धिमत्ता और सहिष्णुता का कोई अंश न था। जन-भावना तथा पुरोहितों, पण्डितों और दरबारियों के प्रभाव में आकर वे मीरा बाई को मेवाड़ के राज-घराने का कलंक मानने लगे। भोजराज जी की बहन और उनकी ननद ऊदा बाई ने उनको सुधारने का बीड़ा उठाया। उनके कुछ गीत राणा और ऊदा बाई के कटु व्यवहार और मीरा बाई की दृढ़ता पर प्रकाश डालते हैं। यह कल्पना करना कठिन नहीं होगा कि उनको अपने दैनिक जीवन में ऊदा बाई और राणा के हाथों कितनी यातनाएँ सहनी पड़ीं। ऊदा बाई के हृदय में उनके प्रति द्वेष और घृणा के भाव थे और उसने मीरा बाई को बदनाम करने, उन्हें कष्ट और धमकियाँ देने में कोई कसर न छोड़ी।

कहा जाता है कि एक रात ऊदा बाई राणा के पास गयी और बोली कि मीरा बाई के कमरे में कोई पुरुष है और उसने स्वयं उनको प्रेमपूर्ण शब्दों में उसके साथ बातें करते सुना है। वास्तव में वे परमात्मा की याद में खोई हुईं विरह-विह्वल हो पुकार रही थीं। यह शिकायत सुनते ही राणा की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने तलवार निकाली और उन्हें मार डालने का निश्चय करके उनके महल की ओर चल पड़े। जब राणा ने उनके कक्ष में प्रवेश किया तब वहाँ कोई पुरुष न था। अपनी भावनाओं में खोई हुई मीरा बाई अकेली बेसुध-सी बैठी थीं, उनके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे और उनके शरीर से प्रकाश की धाराएँ निकल रही थीं जिनसे सारा कक्ष जगमगा रहा

था। जैसे ही राणा ने उन्हें मारने के लिए तलवार उठायी, एक तेज़ प्रकाश ने उन्हें चकाचौंध कर दिया। इस अनुभव से वह एकदम घबरा उठे और तेज़ी से कमरे से बाहर निकल आये।*

ऊदाबाई, जो राणा के इन्तज़ार में बाहर खड़ी थीं, उनकी घबराई हुई हालत देखकर आश्चर्य-चकित रह गयीं। अन्दर क्या हुआ? इसका कुछ भी अनुमान न लगा पाने के कारण वे स्वयं मीरा बाई के कमरे में गयीं और वहाँ का दृश्य देखकर स्तब्ध रह गयीं। वे अभी भी उसी प्रकार बैठी थीं, उन्हें अपने तन-बदन की सुधि न थी, उनका मुख प्रकाश से दमक रहा था जिसकी ज्योति से पूरे कमरे में उजाला छाया हुआ था। ऊदा मन्त्रमुग्ध-सी खड़ी रहीं।, मीरा बाई की महानता का उन्हें आभास होने लगा और उनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने के लिए उन्हें बहुत दुःख और खेद हुआ, उनकी आँखों से पश्चात्ताप के अश्रु बह निकले और वे उनके चरणों में गिर पड़ीं। कोमल-हृदय मीरा बाई ने ऊदा बाई को स्नेह के साथ उठाया और सांत्वना प्रदान की।

कहा जाता है कि राणा ने और दो स्त्रियों को मीरा बाई को 'सुधारने' के लिए भेजा, पर दोनों ही ऊदा की तरह उनकी प्रशंसक बन गयीं।

मीरा बाई अब प्रभु-प्रेम में पूर्णतया डूब चुकी थीं। उनका मन प्रभु के दर्शन और उसके मिलाप की उत्कण्ठा में निरन्तर लीन रहने लगा। वह 'सदा टकटकी लगाये प्रभु के आने के इन्तज़ार में पथ निहारती रहतीं', उनकी 'रातें निद्रा-रहित बीततीं', उन्हें 'अन्न नहीं भाता था', वे इस प्रकार तड़पती थीं 'जैसे जल के बिना मीन' तड़पती है। अपने प्रियतम से मिलने की उनकी व्याकुलता इतनी तीव्र थी कि जब किसी ज्योतिषी ने उनका भविष्य बताना चाहा तो उन्होंने सिर्फ़ एक ही प्रश्न, जो उनके मन में था, पूछा, "ऐ अच्छे ज्योतिषी, मुझे बताओ, मैं अपने प्रिय प्रभु से मिलाप कब प्राप्त करूँगी?"

थें कहो मने जोशी राम मिलण कद होसी॥[13]

ज्योतिषी के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर न था।

---

* इस वार्ता के एक और विवरण के अनुसार राणा ने कमरे में एक के स्थान पर अनेक मीराओं को कक्ष के कोने-कोने में खड़े हुए देखा।

मीरा बाई के ऐसे कई पद हैं जिनसे पता चलता है कि राणा ने उन्हें अपने भक्ति-मार्ग से हटाने के लिए अनेक प्रयत्न किये। परन्तु राणा के कठोर वचनों और धमकियों का उत्तर वे सदा कोमलता और गम्भीरता के साथ देती रहीं। आप एक पद में कहती हैं:

भली बुरी तो मैं नहिं कीन्हीं, राणो क्यूँ है रिसायो।
थाने म्हाने देह दिवी है, ज्याँरो हरिगुण गायो॥[14]

"राणा जी, तुम मुझे क्यों मारना चाहते हो? मैंने न कभी तुम्हारा अनिष्ट सोचा और न ही मैंने कोई बुरा कार्य किया है। प्रभु ने अपनी असीम कृपा से तुमको मनुष्य-जन्म दिया है और मुझे भी, ताकि हम उसकी उपासना तथा भक्ति करें। इसलिए मैं उसकी भक्ति और उसी का गुण-गान करती हूँ। आप कहती हैं:

राणाँजी हो जाति रो कारण म्हारे को नहीं,
लागो म्हारो हरि भगताँ सूँ हेत॥[15]

जाति और कुल की भावनाओं से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है, मैं तो केवल प्रभु के भक्तों की आराधना करती हूँ। अब आप आगे कहती हैं:

गुरू प्रताप साधां री संगत सहजै ही तिर जास्याँ॥
... ...
लोक लाज की काण न मानाँ, रामतणा गुण गास्याँ॥
नाँव अमोलिक अमृत पीकै, सिरके साटे लास्या॥[16]

अपने गुरु के प्रताप और सन्तों की संगति से मैं सहज ही भवसागर से पार हो जाऊँगी। मैं नाम के अनमोल अमृत का पान करूँगी, जिसे मैंने सिर देकर प्राप्त किया है।*

राणा की कठोरता मीरा बाई को विचलित न कर सकी और न ही लोक-निन्दा उन्हें अपने पथ से डिगा सकी। वह लोक-लाज के बन्धनों को तोड़

---

* कबीर साहिब भी कहते हैं, 'कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय॥'[17]

चुकी थीं। अब उनके मन में कोई सांसारिक विचार न थे, क्योंकि परमात्मा का प्रेम उनके मन, हृदय और आत्मा पर पूर्णतया छा गया था।

अपने गुरु के साथ उनका सम्पर्क अधिक समय के लिए नहीं रह सका। उनका अधिकांश जीवन अपने प्यारे सतगुरु के वियोग में ही बीता। उनके पदों में पाई जानेवाली विरह-भावना और गहरी वेदना का यही कारण है। मीरा बाई के अपने गुरु रविदास से मिलाप का विवरण, उनकी दीक्षा और अपने सतगुरु के साथ उनके अल्प, किन्तु गहरी आध्यात्मिकता से परिपूर्ण सम्पर्क के बारे में कोई ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। मौखिक परम्परा से जो भी वृत्तान्त मिलते हैं, वे अत्यन्त प्रेरक और मर्मस्पर्शी हैं।

अपनी चित्तौड़-यात्रा के समय रविदास जी अपनी जाति के लोगों के लिए निर्धारित अलग बस्ती में ठहरा करते थे। ऊँची जाति के लोग न तो इन बस्तियों में जाते थे और न ही यहाँ की झोपड़ियों के अन्दर पैर रखते थे। कहा जाता है कि मीरा बाई एक साधारण दासी के कपड़े पहनकर अपने महल से चुपचाप अपने गुरु के दर्शन के लिए जाती थीं। परन्तु गुरु रविदास की संगति के द्वारा उन्हें कुछ ही समय में बोध हो गया कि सन्तों का मार्ग चोरी और कायरता का मार्ग नहीं है। अतएव परिणाम की कोई चिन्ता न करते हुए वे खुले रूप में बेझिझक अपने गुरु के पास जाने लगीं। वे जाति-भेद और ऊँच-नीच की चिन्ता न करते हुए अपने गुरु के अन्य साधारण शिष्यों के बीच बैठतीं, गुरु रविदास के चरणों में मस्तक झुकातीं और उनके हाथ से प्रसाद ग्रहण करतीं। जब तक गुरु रविदास चित्तौड़ में रहे, वे प्रतिदिन उनके दर्शन के लिए जाती रहीं। इस बात की पुष्टि मीरा बाई के एक पद से होती है जिसमें ऊदा बाई उन पर आक्षेप लगाती हैं कि वे हर सुबह उठकर शहर से बाहर साधारण बस्ती में जाती हैं। ऊदाबाई कहती हैं, "हे मीरा, अब कहना मान लो। तुम्हें तुम्हारी सखियाँ तक समझा रही हैं। राणा, रानियाँ और पूरा परिवार ही तुम्हें मना कर रहा है। सभी तुम्हें मना करते हैं फिर भी तुम सुनती नहीं। ... साध-संगति में बैठ-बैठ कर तुमने अपनी लाज और प्रतिष्ठा खो दी है। तुम नित्य-प्रति सवेरे उठकर शहर से बाहर साधारण बस्ती में जाती हो, इस प्रकार तुमने अपने कुल पर कालिख लगायी है।"

अब मीराँ मान लीज्यो म्हारी, हो जी, थाने सखियाँ बरजे सारी॥
राजा बरजै, राणी बरजै, बरजैं सब परिवारी॥
... ...
साधन के ढिंग बैठ बैठ, लाज गमाई सारी॥
नित प्रति उठि नीच घर जावो, कुल कूँ लगावो गारी॥

मीरा बाई उत्तर देते हुए कहती हैं:

तारयो पीहर, सासरो तारयो, माय मोसाली तारी॥
मीराँ ने सतगुरूजी मिलिया, चरण कमल बलिहारी॥[18]

परन्तु समझाने-बुझाने के बाद भी जब मीरा बाई ने रविदास जी के दर्शन के लिए उनके यहाँ जाना बन्द न किया तो राणा ने उनके महल पर सख़्त पहरा बैठा दिया ताकि वह गुरु-दर्शन के लिए न जा सकें। इस कठोर नियन्त्रण का संकेत उनके कुछ पदों में मिलता है: 'पहरो भी राख्यो चोकी बिठाइयो, ताला दियो जुड़ाय॥'[19] पर उनको अब कोई रोक नहीं सकता था। कहा जाता है कि वे अपनी ओढ़नियों की रस्सी बनाकर उनके सहारे महल की ऊँची दीवार से उतरकर रविदास जी के पास जाने लगीं।*

अपने गुरु के प्रति गहरी भक्ति और प्रीति के फलस्वरूप मीरा बाई के अन्तर में आत्मिक अनुभव होने लगे। इनका कुछ बोध वे अपने पदों में देती हैं और स्पष्ट रूप से कहती हैं कि यह प्रसाद उन्हें अपने गुरु की कृपा द्वारा प्राप्त हुआ है, "हे प्रभु, मेरे हृदय-मन्दिर में पधारो, मैं आपकी राह देख रही हूँ। धरती और आकाश के बीच प्रभात के उज्ज्वल रंग मूसलाधार वर्षा की तरह फैल रहे हैं। अपने गुरु के प्रताप से मैं प्रभु के नाम का सुमिरन कर रही हूँ। अन्तर में दोनों मण्डलों के बीच नाम के कमल में मैं सुखपूर्वक स्थित हूँ। बंकनाल के पार मुरली की मधुर धुन अपने गुरु की कृपा से मुझे सुनायी देने लगी है। मेरी सुहागिन आत्मा इस शरीर रूपी शहर में आनन्द-मग्न है।

* अन्य वृत्तान्त के अनुसार मीरा बाई चित्तौड़ के क़िले की ऊँची दीवार से उतरकर बहुत सवेरे रविदास जी के दर्शन के लिए जाती थीं। रविदास जी क़िले से दूर अपनी जाति के लोगों की बस्ती में निवास करते थे।

अपने दयालु गुरु से मिलने पर मेरा जन्म-मरण का भय नष्ट हो गया है। दायें (गंगा) और बायें (जमुना) के बीच की गली में अब मेरी आत्मा निवास करने लगी है। मीरा बाई कहती हैं, जब से मुझे सब प्रकार से समर्थ गुरु मिले हैं तब से मुझ में पूर्ण विश्वास और प्रतीति आ गयी है:

म्हांरे मिंदरी ए पधारौ जोऊँ थांरी बाट॥ टेक
धरण गिगन विच झोरी लागी उगैत परभात।
रसनाँ मेरी राम रटत है सतगुर जी रै परताप॥
दोई चोकी में सहजै छेकी नाम कवल कै घाट।
बंक-नाल पर मुरली बाजै सतगुरु मांर्या थाट॥
काया-नगर में रास रच्यो, है सुरत सुहागण नार।
जनम-जनम का टोटा भाग्या गुरु मिल्या दातार॥
इंगला पिंगला सुखमण नारी सहैज रच्यो घरवास।
मीरां ने गुरु गरवा मिलिया जब पायो बिसवास॥[20]

कई विद्वानों का विचार है कि परमात्मा ही मीरा बाई के गुरु थे और कोई देहधारी गुरु उन्होंने धारण ही नहीं किया। इस नतीजे पर वे इसलिए पहुँचे कि उन्होंने सभी सन्तों की तरह गुरु और परमात्मा को एक-रूप अथवा एक-दूसरे से अभिन्न माना है। यह सन्तों की शिक्षा का मूल आधार है कि सतगुरु, परमात्मा का साक्षात्कार करके तथा उससे अभिन्न होकर मनुष्य के रूप में परमात्मा ही होते हैं।* मीरा बाई अपने गुरु के वियोग में तीव्र वेदना तथा गहरी उत्कण्ठा का वर्णन करते हुए परमात्मा को भी प्रेम की उसी भावना

---

* कबीर साहिब कहते हैं, 'गुरु साहिब तो एक हैं', तथा 'गुरु साहिब करि जानिये'[21]। दादू साहिब अपनी वाणी में गुरु को गोबिन्द कहते हैं:

इक लख चन्दा आणि घर, सूरज कोटि मिलाइ।
दादू गुर गोबिंद बिन, तौ भी तिमर न जाइ॥[22]

गुरु राम दास जी फ़रमाते हैं कि शरीर रूपी समुद्र को मैंने मथकर देखा और यह अनुपम ज्ञान प्राप्त किया कि गुरु परमात्मा है और परमात्मा ही गुरु है; दोनों में कोई भेद नहीं है:

(शेष अगले पृष्ठ पर)

से सम्बोधित करती हैं। उनके बहुत-से पदों में गुरु और परमात्मा अभिन्न हो गये हैं और अपने कई गीतों में वे कहती हैं कि गुरु और परमात्मा एक ही हैं, ''मुझे सतगुरु मिल गये और उनके द्वारा मुझे सत्य का बोध हो गया। मैंने अनादि, अनन्त, साहिब को पा लिया है। यदि मैं उन्हें न पाती तो संसार में जन्म-मरण के क्रम में भटकती रहती।''

सतगुरू मिलिया सुंज पिछाणी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती॥
... ...
साहब पाया आदि अनादि, नातर भव में जाती।[26]

मेवाड़ के रूढ़िवादी कट्टरपंथियों का द्वेषपूर्ण विरोध बढ़ता ही गया। मीरा बाई के सतगुरु-प्रेम ने उनकी क्रोधाग्नि में घी का काम किया, परन्तु सभी प्रकार के विरोध ओर शत्रुतापूर्ण व्यवहार पर भी वे शान्त और निर्विकार रहीं। लोग कहने लगे कि वे पथ-भ्रष्ट हो गयी हैं, वे अपने कुल के लिए एक कलंक हैं, वे भले-बुरे की समझ खो बैठी हैं और यहाँ तक कि वे पागल हो गयी हैं। मीरा बाई अपने एक गुजराती पद में उत्तर देती हैं, ''पागल? हाँ, मैं पागल हूँ; परन्तु अपने इस पागलपन के द्वारा मैंने मनुष्य-जन्म के असली ध्येय को प्राप्त कर लिया है।'' वे आगे कहती हैं, ''प्रभु-प्रेम का जो रस देवी-देवताओं को भी दुर्लभ है, उस रस का आनन्द यह पागल निरन्तर लेती है। ... हे लोगो, तुम मुझे 'पागल, पागल' क्या कहते हो, मुझ जैसे पागलों का सभी कार्य प्रभु स्वयं सम्पूर्ण करते हैं।''[27]

(पिछले पृष्ठ के फ़ुट नोट का शेष)

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई॥
गुर गोविंदु गुोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥[23]

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है कि गुरु और परमेश्वर को एक ही जानो:

गुरु परमेसरु एको जाणु॥ जो तिसु भावै सो परवाणु॥[24]

महात्मा चरनदास जी कहते हैं कि यह निश्चित रूप से जान लो कि हरि और गुरु एक ही हैं:

हरि गुरु एकहि जान यह निस्चय लाइये।[25]

राणा रतन सिंह का राज्य-काल सन् 1531 में एकाएक समाप्त हो गया, जब उसने अपने मामा सूरजमल की हत्या करने के प्रयास में अपने ही प्राण गँवा दिये। परन्तु मीरा बाई के प्रति वैर-भाव रखनेवाले राणा रतन सिंह की मृत्यु के साथ उनकी विपत्तियों का अन्त न हुआ। मेवाड़ का नया शासक राणा विक्रमादित्य अदूरदर्शी, हठी और चरित्रहीन था। अपने दरबारियों और पण्डितों के बहकावे में आकर वह शीघ्र ही उनके प्रति शत्रुता की भावना रखने लगा। पुरोहितों और सामन्तों से विचार-विमर्श करके उसने मीरा बाई को विष देकर मार डालने का निर्णय किया।

दयाराम नामक एक व्यक्ति को सोने के कटोरे में विष ले जाकर उनको चरणामृत* के नाम से देने के लिए भेजा गया। ऊदा बाई को इस षड्यन्त्र का पता चल गया और उन्होंने तुरन्त जाकर मीरा बाई को चेतावनी दी; परन्तु उन्होंने कभी चरणामृत लेने से इनकार नहीं किया था। अतएव यह जानते हुए भी कि प्याले में विष है, उन्होंने सहर्ष पी लिया। कुछ समय बाद राणा ने अपने आदमियों को भेजा कि उनके शरीर को उठाकर वन में डाल आयें, परन्तु उन पर विष का कोई असर नहीं हुआ था। जब राणा के आदमी पहुँचे तो उन्होंने उनको आत्म-विस्मृत हो भजन गाते हुए पाया। उनका मुख दिव्य-प्रेम की अलौकिक ज्योति में चमक रहा था। मीरा बाई के अपने शब्दों में वह इस परीक्षा से ऐसे निकलीं जैसे सोना तपने के बाद निर्मल और शुद्ध निकलता है:

जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बाराबांणी॥† [28]

वह कौन-सी बात थी जिसके लिए राणा ने मीरा बाई के प्राण लेने चाहे? इतिहास, परम्परा तथा जनश्रुति तक इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देती। फिर भी कोई विशेष कारण अवश्य होगा जिसकी वजह से उनकी हत्या का प्रयत्न किया गया। सम्भव है, सन्त रविदास उस समय चित्तौड़ अथवा चित्तौड़ के निकट किसी स्थान में होंगे और उनके द्वारा अपने सतगुरु के

---

* सन्त अथवा गुरु द्वारा प्रसाद रूप में दिया गया जल अथवा पेय पदार्थ चरणामृत कहलाता था, परन्तु धीरे-धीरे इष्ट की मूर्ति के धोये हुए पानी को चरणामृत कहा जाने लगा।

† **बाराबांणी**=शुद्ध कुन्दन।

दर्शन के लिए प्रतिदिन जाने से राज-पुरोहित, पण्डित, उच्च-जाति के लोग तथा राज-परिवार के सदस्य इतने क्रुद्ध हुए होंगे कि उन्होंने उनकी हत्या की योजना बनायी। अपने एक पद में मीरा बाई कहती हैं, "कुछ दुष्ट लोगों ने प्रतिदिन मुझे अपने गुरु के सत्संग में जाते देख लिया। मैं तो ख़ुश हूँ क्योंकि परमात्मा ने अपने न्याय में मुझे सच्चा और दुनिया को झूठा पाया; अब कोई निन्दा करे या स्तुति, मैं तो अपनी ही राह चलूँगी":

> साध संगत में नित उठ जातां, दुरजन लोकां दीठी॥
> मैं म्हांरी गिरधर न्याव नवेरो, और दुनी सब झूठी॥
> भावै कोई निंदो भावे कोई बंदो, चलसी चाल अफूठी॥[29]

मीरा बाई ने अपने कई पदों में इस घटना का उल्लेख किया है और विष को अमृत बना देने के लिए परमात्मा का आभार माना है। उनका सतगुरु-प्रेम अब और तीव्र हो उठा और वे अपना पूरा दिन भक्तों और साध-सन्तों की संगति में बिताने लगीं। एक प्रेमी-भक्त के रूप में उनकी ख्याति फैलने लगी और लोग, जिनमें ज़्यादातर साधारण ग़रीब प्रजा थी,उनके दर्शन और उनके भजन सुनने के लिए आने लगे।

कहा जाता है कि मुग़ल शाहंशाह अकबर भेष बदलकर अपने दरबार के प्रसिद्ध गायक तानसेन के साथ मीरा बाई को देखने और उनके भक्तिपूर्ण गीतों को सुनने के लिए चत्तौड़ आये। उनके अद्वितीय व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्होंने आदरपूर्वक सिर झुकाया और एक मूल्यवान हार भेंट में देना चाहा। परन्तु मीरा बाई ने उसे नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह घटना उस समय की नहीं हो सकती जब मीरा बाई चित्तौड़ में थीं, क्योंकि अकबर सन् 1556 में गद्दी पर बैठे और उस समय तक वे चित्तौड़ छोड़ चुकी थीं। हरमन ग़ैत्ज़ (Hermann Goetz) मीरा बाई की जीवनी में लिखते हैं कि अकबर उनके पास चित्तौड़ में नहीं बल्कि आमेर में गये जहाँ उन्होंने अपने जीवन के उत्तरार्ध के कुछ दिन बिताये थे।

युवा अकबर के मन पर मीरा बाई के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा और धार्मिक संकीर्णता के स्थान पर उनके मन में उदार भावनाएँ उत्पन्न

होने लगीं जिसके फलस्वरूप आगे चलकर उन्होंने एक विश्वव्यापी धर्म की स्थापना करने का प्रयास किया।

मीरा बाई की लोकप्रियता और ख्याति से राणा विक्रम का रोष और बढ़ गया। उसने तथा उसके सलाहकारों ने उनके प्राणान्त का एक और प्रयत्न किया। इस बार उन्होंने एक अत्यन्त विषैले नाग को आभूषणों के डिब्बे में रखकर भेजा और कहलाया कि यह राणा की ओर से एक बहुमूल्य हार की भेंट है। इस घटना का मीरा बाई ने अपने कुछ पदों में इस प्रकार उल्लेख किया है:

> पेट्याँ बासक भेजियो जी, यो छै मोतीडाँ रो हार।
> नाग गले में पहिरियो, म्हाँरे महल भयो उजियार॥[30]
>
> साँप टिपारो मोकल्यो, दो मीराँ के हाथ।
> खोल टिपारो देखिया, हो गया नोसरहार॥[31]

विष देने की वार्ता के समान ही सर्प की घटना का भी उल्लेख केवल मीरा बाई ने ही नहीं बल्कि बाद के कई भक्तों और कवियों ने भी किया है। इन घटनाओं की सच्चाई पर यह कहकर आपत्ति उठायी जा सकती है कि सम्भव है कि किसी नेक व्यक्ति ने विष के स्थान पर कोई हानि-रहित पेय और सर्प के स्थान पर असली हार रख दिया हो।[32] परन्तु यदि ऐसा हुआ भी हो तो भी मीरा बाई की दृढ़ता, उनके विश्वास और प्रेम पर सन्देह नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्होंने तो विष समझकर ही प्याला पिया और डिब्बे में सर्प मानकर ही उसे खोला।

कुछ विद्वानों का विचार है कि राजनीतिक षड्यन्त्रों की वजह से मीरा बाई पर अत्याचार किये गये, पर ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उन्होंने कभी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से चित्तौड़ की राजनीति में हस्तक्षेप किया हो। वे परमात्मा के प्रेम में इतनी डूबी हुई थीं कि उन्हें समाज और राजनीति में कोई रुचि न थी। अपनी स्पष्ट, निर्भीक और परम्परा विरोधी भक्ति के लिए; बाहरमुखी क्रियाओं, पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड आदि के खण्डन के लिए और

जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच की भावनाओं की उपेक्षा करने के लिए सन्तों और भक्तों को सदैव सताया और कष्ट दिया गया है। यद्यपि मीरा बाई को न तो सूली पर चढ़ाया गया, न उनका सिर काटा गया; फिर भी जिन कष्टों का उन्हें सामना करना पड़ा वे कुछ कम न थे। उनका पूरा जीवन ही दुःख और दर्द की एक गाथा है। समाज के द्वारा तिरस्कृत, राज्य के लोगों द्वारा निन्दित, अपने ही परिवार के द्वारा उत्पीड़ित, उन्हें निरन्तर कष्ट और यातनाओं का सामना करना पड़ा। परन्तु उन्होंने बग़ैर किसी वैर-भाव या शिकायत के साहस और धीरज के साथ, सन्तों-सी सहिष्णुता के साथ, सबकुछ शान्तिपूर्वक सहा।

मीरा बाई ने कभी यातना देनेवालों को नहीं कोसा। उनका कोई भी दुर्व्यवहार उन्हें बदला लेने के लिए उत्तेजित न कर सका। वे इतनी कोमल-हृदय और दयालु थीं कि उनके मुख से कटु वचन न निकल पाते थे और अपने सतानेवालों के प्रति उनके हृदय में केवल सहानुभूति के भाव थे। वे राणा से कहती हैं, ''मैं अपने पीहर और ससुराल के परिजनों का अपने साथ उद्धार कर देती, परन्तु उन्होंने ''म्हाँरी नेक न मानी बात।''[33]

एक प्राचीन ग्रन्थ[34] में दी गयी घटना उनकी नम्रता और सहिष्णुता पर प्रकाश डालती है। एक पुरोहित, जिनका अपनी धार्मिकता के लिए बड़ा नाम था, एक बार चित्तौड़ में मीरा बाई के मेहमान होकर ठहरे। एक दिन वे उनके एक परम्परा-विरुद्ध भक्ति-गीत को सुनकर बहुत अप्रसन्न हुए। गीत को अपना और अपनी मान्यताओं का अपमान मानकर वे भक्तों के समुदाय में से उठ खड़े हुए और बड़े रोषपूर्ण स्वर में ज़ोर-ज़ोर से मीरा बाई को अपशब्द कहने लगे और यह कहते हुए जाने लगे कि वे अब उनका आतिथ्य स्वीकार नहीं करेंगे। मीरा बाई को दुःख हुआ कि कोई उनसे इस प्रकार अप्रसन्न होकर चला जाये। उन्होंने बड़ी शान्ति और नम्रता के साथ पुरोहित से निवेदन किया कि वे एकाएक इस प्रकार न जायें और जितने दिन रहना चाहें, रहें, परन्तु कट्टर पुरोहित अपने निर्णय पर जमे रहे। मीरा बाई हमेशा अपने यहाँ आनेवाले भक्तों और धार्मिक पुरुषों का आदर करती थीं। उन्होंने पुरोहित के लिए बिदा में वस्त्र, धन और खाने का सामान भेजा। वे अब इस अवस्था पर पहुँच चुकी थीं जिसमें स्तुति और निन्दा, यश और अपयश

उनके लिए समान थे। निर्विकार और अनासक्त होने के साथ ही उनके उदार हृदय में सबके प्रति प्रेम की भावना थी। अपने एक पद में वे कहती हैं कि भक्त को एक वृक्ष की तरह हमेशा शान्त, विशाल-हृदय और सहिष्णु होना चाहिए। यदि उसे कोई काटने आता है तो वह उससे वैर-भाव नहीं रखता और यदि कोई सींचने आता है तो उससे मोह नहीं करता। अपने ऊपर पत्थर फेंकनेवालों को भी वह मधुर फल ही देता है। आँधी और बरसात के वेग को वह बिना किसी शिकायत के शान्त-भाव से सहता है:

मना तू तो वृक्षन की लत लेइ रे, थारो कांइ करे डर भव रे॥*
काटन वाला सूं बैर नहीं है, नहीं सींचन को सनेह रे।
जो कोई बावे कंकर पत्थर, उनको भी फल देइ रे॥†
पवन चलावे, इन्द्र झकोले, दुख सुख आपहि सहि रे।
सीत गहाम तो शिर पर सहि है, पन्छिन को सुख देइ रे॥‡ [35]

मीरा बाई के सम्पर्क में जो भी आता वह उनके असाधारण व्यक्तित्व, उनके दिव्य प्रेम, उनकी भक्ति और नम्रता से प्रभावित हुए बिना न रह पाता। भक्तों और साधुओं के लिए उनके महल के द्वार हमेशा खुले रहते और उन्हें निस्संकोच भोजन और वस्त्र दिये जाते। परन्तु कुछ कट्टरपंथी लोग उनकी उन्मुक्त भक्ति और उसके बढ़ते हुए प्रभाव से जलने लगे।

उनको नीचा दिखाने के लिए उन्होंने एक ब्राह्मण युवक को इस बात पर राज़ी किया कि वह जाकर उनसे कहे कि प्रभु ने युवक को दर्शन दिये हैं और आदेश दिया है कि वह मीरा बाई के साथ एक ही सेज पर रात बिताये। उन्होंने युवक की इस धृष्टतापूर्ण बात को निर्विकार भाव से सुना और उसे शाम को आने के लिए कहा।

शाम को रोज़ के समान साधुओं और भक्तों की मंडली उनके आँगन में जमी हुई थी और सब मिलकर भक्ति के गीत गा रहे थे। युवक जब महल

---

* **कांइ**=क्या।
† **बावें**=फेंके।
‡ **गहाम**=गर्मी, धूप।

के द्वार पर पहुँचा तो द्वारपाल उसे अन्दर ले आये और मीरा बाई ने उठकर उसका स्वागत किया। परन्तु जब युवक ने देखा कि भक्तों की मंडली के बीच में सेज बिछी हुई है तो वह घबरा गया। कुछ साहस बटोरकर उसने आपत्ति उठाई कि वह इतने लोगों के बीच कैसे सो सकता है। मीरा बाई ने शान्त-भाव से उत्तर दिया कि अपने उस प्रभु से जो सब जगह मौजूद है और सबकुछ देख रहा है, वे कुछ भी नहीं छिपा सकतीं और न ही उसके भक्तों से जो एक तरह से उन्हीं का परिवार है।*

उनके उत्तर की निष्कपट सरलता ने उस युवक के हृदय को हिला दिया। खेद और पश्चात्ताप से अभिभूत वह अश्रुपूरित नेत्रों सहित उनके चरणों में गिर पड़ा। मीरा बाई ने उसे क्षमा कर दिया और प्रभु-प्रेम के पद गाने में लीन हो गयीं। उनका मुख प्रेम और भक्ति की ज्योति में चमक रहा था और उपस्थित समुदाय तथा ब्राह्मण युवक मन्त्रमुग्ध हो सुन रहे थे।

राणा और उसके सलाहकारों द्वारा मीरा बाई को सताने में कोई कमी न आयी। उन लोगों ने भक्तों और साधुओं को उनके महल में जाने से रोकने के लिए उन्हें डराना-धमकाना शुरू कर दिया। अपनी भक्ति में इस प्रकार की बाधाओं से तंग आकर उन्होंने आख़िर चित्तौड़ छोड़ने का निश्चय कर लिया। उन्हें न लोक-लाज की चिन्ता थी, न अपने प्राणों का भय, परन्तु उनकी वजह से उनके पास आनेवाले भक्तों को भी कष्ट सहने पड़ रहे थे जिसे मीरा बाई का मन स्वीकार न कर सका। एक रात वे चुपचाप चित्तौड़ के दुर्ग से बाहर निकल पड़ीं। चित्तौड़ छोड़ना उनके लिए एक कठिन निर्णय रहा होगा, क्योंकि एक हिन्दू नारी को कितनी भी पीड़ा और यातना क्यों न हो, वह अपने पति का घर नहीं छोड़ती। इतने दिन लोगों के ताने और राणा का अत्याचार धैर्यपूर्वक सहते रहने का शायद यही कारण था।

निश्चित रूप से यह मालूम नहीं कि मीरा बाई कब चित्तौड़ छोड़कर गयीं पर विद्वानों का अनुमान है कि 1534 ई. के अन्त में गयी होंगी। 1535 में जब गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर हमला किया, उसके

* यह वृत्तान्त प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका तथा राघवदास दादूपंथी की भक्तमाल में आता है। अनेक आधुनिक विद्वानों ने भी इसका उल्लेख किया है।

कुछ महीने पहले वे चित्तौड़ से चली गयी होंगी। यदि वे उस समय वहाँ होतीं तो चित्तौड़ पर जो विपत्ति आयी और जो तबाही वहाँ हुई उसमें से उनके लिए अनाहत निकलना असम्भव था।

गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने एक विशाल सेना सहित चित्तौड़ पर 1535 ई. में आक्रमण किया। राणा विक्रम या तो भाग गया अथवा अपने सामन्तों की सहायता से किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया गया। इस प्रकार चित्तौड़ शासक-हीन रह गया। परन्तु विधवा रानियों जवर बाई और कर्णवती ने दुर्ग की रक्षा का भार अपने हाथों में ले लिया। कुछ राज-भक्त सामन्तों और योद्धाओं को इकट्ठा करके उन्होंने कुछ समय जमकर युद्ध किया। फिर भी वे आक्रमणकारियों की बड़ी सैन्य-शक्ति का अपने सीमित साधनों द्वारा अधिक समय तक सामना न कर सकीं। जवर बाई युद्ध-भूमि में अपनी स्त्री-सेना के साथ वीरगति को प्राप्त हुईं। उन्होंने शत्रु सेना के अनेक योद्धाओं को धराशायी किया और अपनी वीरता और युद्ध-कौशल से सबको चकित कर दिया। परन्तु बहादुरशाह ने फिर से अपनी सेना का संगठन किया और क़िले को घेर लिया। यह देखकर कि अब चित्तौड़ की रक्षा असम्भव है, सम्पूर्ण पुरुष नागरिकों ने केसरिया बाना पहना, शस्त्र उठाये और क़िले का द्वार खोलकर शत्रुओं पर टूट पड़े। इस युद्ध में इनमें से एक भी जीवित न बचा। चित्तौड़ की सभी महिलाओं ने रानी कर्णवती के नेतृत्व में जौहर के द्वारा प्राण त्याग दिये। विजेता बहादुरशाह ने जब दुर्ग में प्रवेश किया तो उसे जन-शून्य और वीरान पाया।

मीरा बाई के पीहर वाले हमेशा मेवाड़ के राणाओं का साथ देते और युद्ध में उनकी ओर से लड़ते रहे थे। उनके पिता ने मेवाड़ की ओर से लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दी थी। परन्तु इस बार राव वीरम देव, मीरा बाई के प्रति राणा के दुर्व्यवहार से अत्यन्त दुःखी और अप्रसन्न थे और वे राणा की मदद के लिए न आये।

मीरा बाई बहादुरशाह के आक्रमण के कुछ महीनों पहले ही चित्तौड़ छोड़ चुकी थीं। यह कहा जाता है कि वे पहले अपने पीहर मेड़ता गयीं। राव वीरम देव ने, जो चित्तौड़ में मीरा बाई के कष्ट को जानते हुए भी

विवश हो मौन थे, उनका बड़े स्नेह के साथ स्वागत किया। परन्तु मेड़ता में उनका निवास सुख और शान्तिपूर्ण होना सम्भव न था। क्या चित्तौड़ और क्या मेड़ता, पूरा राजस्थान ही रूढ़िवादियों और पण्डितों के प्रभाव में था, रीति-रिवाज और कर्मकाण्ड में जकड़ा हुआ था। बाहरमुखी क्रियाओं, उपवास, तीर्थ-यात्रा आदि का मीरा बाई द्वारा स्पष्ट शब्दों में खण्डन उनकी परम्पराओं और कट्टरता की जड़ पर एक गहरा आघात था। अपने अनेक पदों में उन्होंने बाहरमुखी क्रियाओं का खण्डन किया है। एक शब्द में वे कहती हैं कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए भजन करना चाहिए; हे मित्र, उससे प्रेम करना चाहिए। यदि नदियों-सरोवरों में स्नान करने से हरि मिल सकता है तो मैं जल का जन्तु बनना पसन्द करती। यदि फल, कन्द आदि खाने से प्रभु का मिलाप हो सकता है तो बन्दर बनना क्या बुरा है जो वन में फलों पर निर्वाह करते हैं। यदि पत्तियाँ आदि खाने से परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है तो बकरियों की कोई कमी नहीं है, उन्हें परमात्मा की प्राप्ति हो जानी चाहिए थी। यदि पत्थर को पूजने से प्रभु का मिलाप हो सकता है तो मैं पहाड़ पूजने को तैयार हूँ, परन्तु वे कहती हैं, बिना सच्चे प्रेम के प्रभु-प्राप्ति नहीं हो सकती:

साधन करना चाही रे मनवा, भजन करना चाही।
प्रेम लगाना चाही रे मनवा, प्रीति करना चाही॥
नित नहान से हरि मिलें तो मैं जल जन्तु होई।
फल मूल खाये हरी मिलें तो बानर बन्दर होई॥
... ...
तुलसी पूजें हरी मिलें तो पूजूं तुलसी झाड़।
पत्थर पूजें हरी मिलें, तो मैं पूजूं पहाड़॥
दूध पिये ते हरी मिलें तो बहुत हैं भक्तिवाला।
मीराँ कहे बिना प्रेम के नाहिं मिले नंदलाला॥[36]

इस प्रकार के कथन ने उस समय की धार्मिक मान्यताओं की नींव को हिला दिया। इसके फलस्वरूप जिस आलोचना और निन्दा का सामना मीरा

बाई को चित्तौड़ में करना पड़ा था, उसने मेड़ता में भी उनका पीछा न छोड़ा। राव वीरम देव उनको पुत्रीवत् चाहते थे; उनकी पत्नी ने शैशवकाल से उन्हें पाला था और उनके पूरे परिवार में वही एकमात्र कन्या सन्तान थीं परन्तु वीरम देव एक न्याय-प्रिय शासक होने के साथ ही सामाजिक, पारिवारिक और धार्मिक परम्पराओं के पोषक भी थे। वे अपनी प्रिय भतीजी के मार्ग में बाधक नहीं होना चाहते थे, परन्तु वे अपने सामन्तों और प्रमुख नागरिकों को अप्रसन्न भी नहीं करना चाहते थे। भावुक मीरा बाई को वीरम देव की परेशानी समझने में देर न लगी। एक दिन उन्होंने चुपचाप, बग़ैर किसी शिकायत या कटुता के मेड़ता छोड़ दिया, जिस प्रकार कि वे पहले चित्तौड़ छोड़ चुकी थीं।*

मेड़ता छोड़ने के बाद मीरा बाई कहाँ गयीं? इस विषय में इतिहास क़रीब-क़रीब मौन है और परम्परागत तथा मौखिक विवरण भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी साधारणतया यह माना जाता है कि पहले वे वृन्दावन गयीं। जहाँ भी वे जाती थीं, वे भक्तों और धार्मिक पुरुषों की संगति में रहने का प्रयास करती थीं। वे वृन्दावन में जीव गोस्वामी से मिलने गयीं जिनका लोग बहुत आदर करते थे और सभी धर्म-पुरुषों में जिनकी बड़ी धाक थी। वे भगवान् कृष्ण की गोपी-भाव से उपासना करते थे जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि में केवल कृष्ण ही एक पुरुष माने जाते हैं तथा उनके सभी भक्त (स्त्री हों या पुरुष) उनको चाहनेवाली गोपियाँ मानी जाती हैं। इसके साथ ही जीव गोस्वामी कठोर संयम और त्यागपूर्ण जीवन बिताते थे और स्त्रियों का मुख तक नहीं देखते थे।

जब जीव गोस्वामी ने सुना कि कोई मीरा बाई नामक भक्त-स्त्री उनसे मिलना चाहती हैं तो उन्होंने मिलने से यह कहकर इनकार कर दिया कि उनकी प्रतिज्ञा है कि वे कभी स्त्री का मुख नहीं देखेंगे। यद्यपि मीरा बाई प्रसिद्ध जीव गोस्वामी से छोटी थीं, फिर भी वे भक्ति में परिपक्वता प्राप्त कर चुकी थीं। जीव गोस्वामी की ही गोपी-भावना का आधार लेकर उन्होंने

---

* कुछ विद्वानों का मत है कि जोधपुर के राव मालदेव द्वारा मेड़ता पर आक्रमण करने और वीरम देव के हार जाने के कारण मीरा बाई को मेड़ता छोड़ना पड़ा।

कहलवाया कि वे समझती थीं कि वृन्दावन में सिर्फ़ श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं, परन्तु उन्हे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यहाँ एक और पुरुष भी मौजूद है। जीवन में पहली बार किसी ने, और वह भी एक नारी ने, जीव गोस्वामी को इस आत्म-विश्वास के साथ उत्तर दिया था। गोस्वामी की आँखों से भ्रम का पर्दा हट गया, बाहर आकर उन्होंने हाथ जोड़कर मीरा बाई का अभिवादन किया और आदरपूर्वक स्वागत किया।

मीरा बाई वृन्दावन में अधिक समय नहीं रुकीं। भारत के तीर्थों और धर्म-स्थानों में जिस खोखले रूढ़िवाद का प्रचलन था वह उनके भक्त-हृदय को कैसे भा सकता था? कहा जाता है कि वृन्दावन से मीरा बाई गुजरात की ओर चल पड़ीं। गुजरात-यात्रा का एक ध्येय यह भी हो सकता है कि वे अपने गुरु रविदास से मिलने वहाँ गयी हों, जो सम्भवतः उस समय गुजरात में थे।* वे द्वारका कब पहुँचीं, इसका कोई पता नहीं लगता। वैसे जब उन्होंने मेड़ता छोड़ा तब उनकी आयु केवल 36 अथवा 38 वर्ष की थी। आयु में कम होते हुए भी मीरा बाई की भक्ति आन्तरिक आत्मिक अनुभवों तथा आत्म-ज्ञान के द्वारा पूर्णतया विकसित हो चुकी थी।

मीरा बाई ने काफ़ी समय गुजरात में बिताया। उन्होंने गुजराती भाषा में अनेक पदों की रचना की है और उन्हें गुजराती साहित्य के श्रेष्ठ भक्त-कवियों में गिना जाता है। विद्वानों का अनुमान है कि उन्होंने यहाँ कुछ वर्ष शान्तिपूर्वक बिताये।

चित्तौड़ के पतन के बाद कुछ सामन्तों ने राणा विक्रम को लाकर फिर से मेवाड़ की क्षत-विक्षत राजगद्दी पर बिठाया। परन्तु एक साल के अन्दर ही उसे उसके चचेरे भाई बनबीर ने मार डाला।† सन् 1537 में बनबीर ने अपने आपको राणा घोषित किया। 1540 में राणा साँगा के सबसे छोटे पुत्र और

---

* सन्त रविदास ने गुजरात में काफ़ी समय बिताया था अथवा वे गुजरात की ओर जाते रहते थे। गुजरात में आज भी कई समुदाय ऐसे हैं जो अपने आपको रविदास जी के अनुयायी कहते हैं। सम्भव है कि मीरा बाई ने गुजरात में कुछ समय अपने गुरु के चरणों में बिताया, जब तक रविदास जी गुजरात में रहे।

† बनबीर राणा साँगा के बड़े भ्राता पृथ्वीराज का अवैध पुत्र था।

मीरा बाई के छोटे देवर उदय सिंह ने कुछ राज-भक्त सामन्तों की सहायता से बनबीर को मार भगाया और वह स्वयं राणा बन गया।

चित्तौड़ बड़े कठिन और कष्टपूर्ण समय से गुज़रा था। किसी समय एक शक्तिशाली राज्य की राजधानी आज घटकर एक साधारण सूबे के समान रह गयी थी। वीर पुरुषों और स्त्रियों की एक पूरी पीढ़ी ही युद्ध में अपने प्राण गँवा चुकी थी। साधारण जनता इन सब विपत्तियों के परिणाम अभी भी भुगत रही थी, परन्तु मेवाड़ वासी, मीरा बाई को भूले नहीं थे। ग़रीब, साधारण जाति के सरल परिवारों में उनके पद बड़े प्रेम के साथ गाये जाते थे। चित्तौड़ निवासी अब अपने दुर्भाग्य को मीरा बाई पर किये गये अत्याचारों का फल मानने लगे थे। राणा रतन सिंह को अस्वाभाविक मौत मरना पड़ा; राणा विक्रम की, जिसने मीरा बाई के प्राण लेने के प्रयास किये, हत्या हो गयी और चित्तौड़ के लोग, जिन्होंने उनकी निन्दा की और उन्हें सताया, क़रीब-क़रीब बरबाद हो गये। सभी ओर एक गहरे पछतावे की भावना फैलने लगी। मीरा बाई के दुःखी और कष्टपूर्ण जीवन को याद करके लोगों में उनके प्रति प्रेम और सहानुभूति की भावना बढ़ने लगी। हरएक के मन में यही विचार था कि उनके प्रति किये गये अन्याय का प्रायश्चित्त तभी हो सकेगा जब राणा और नागरिक उनसे क्षमा माँगकर उनको वापस ले आयेंगे।

राणा उदय सिंह ने इन भावनाओं का आदर किया और कुछ ब्राह्मणों को मीरा बाई को वापस ले आने के लिए द्वारका भेजा।

मीरा बाई न तो अब राजवधू थीं, न ही चित्तौड़ को अपना घर मानती थीं। जिस ज़ंजीर ने उन्हें मेवाड़ के राज-घराने से बाँध रखा था उसे वे तोड़ चुकी थीं। उनके हृदय में राज-महल के पिंजरे में, चाहे वह सोने का पिंजरा ही क्यों न हो, लौटने की कोई इच्छा न थी। वे अपने भाग्य पर सन्तुष्ट थीं और उनका मन अपने प्रियतम, परमात्मा के चरणों में लगा हुआ था। उन्होंने वापस चित्तौड़ लौटने के लिए इनकार कर दिया। ब्राह्मणों की प्रार्थना, उनका अनुनय-विनय और हठ उन्हें अपने निर्णय से न डिगा सका। अपने प्रयासों को असफल होते देख और राणा की अप्रसन्नता से डरकर ब्राह्मणों ने घोषणा की कि जब तक वे उनके साथ चित्तौड़ जाने के लिए तैयार न होंगी वे अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे।

मीरा बाई विचित्र दुविधा में थीं। वे चित्तौड़ लौटने के लिए तैयार न थीं और साथ ही यह भी स्वीकार नहीं कर सकती थीं कि बग़ैर अन्न-जल के ब्राह्मणों का प्राणान्त हो जाये। इसी परेशानी में तीन-चार दिन बीत गये। ब्राह्मणों की हालत देखकर उनका दिल पसीज गया और विवश हो उन्होंने दूसरे दिन चित्तौड़ चलने के लिए स्वीकृति दे दी। कहा जाता है कि उस दिन शाम को वे द्वारकाधीश के मन्दिर में प्रार्थना करने के लिए गयीं। दूसरे दिन सुबह जब पुजारियों ने मन्दिर के द्वार खोले तो मीरा बाई वहाँ नहीं थीं। केवल उनकी ओढ़नी मूर्ति के हाथ में लटक रही थी। पण्डितों और पुजारियों ने यह मान लिया कि वे कृष्ण की मूर्ति में समा गयी हैं।

यह कथा शीघ्र ही लोक-प्रिय हो गयी। राजस्थान में मीरा बाई की भक्ति की गाथा फैल चुकी थी और उनके इस प्रकार के अन्त की कथा ने न केवल मीरा बाई की महिमा ही बढ़ायी बल्कि उनकी मृत्यु को आत्म-बलिदान का रूप भी दे दिया। ब्राह्मणों की समस्या इस प्रकार हल हो गयी और वे भक्त मीरा बाई के आत्मोत्सर्ग की इस कथा के साथ राणा के पास लौट आये। मेवाड़ के राणा और सामन्त अपने पहले जैसे राजकीय जीवन में उलझ गये और मीरा बाई को आसानी से भूल गये, क्योंकि मीरा बाई के समकालीन लेखों और मेवाड़ की गाथाओं में उनके नाम का उल्लेख नहीं है।

कुछ आधुनिक विद्वानों ने इस घटना को मीरा बाई के चुपचाप ग़ायब हो जाने का प्रमाण माना है, उनकी मृत्यु का प्रमाण नहीं। इस प्रकार ग़ायब होना अथवा मन्दिर में से चुपचाप निकल जाना मीरा बाई की दुविधा का एकमात्र समाधान था। रात्रि के समय चुपचाप मन्दिर से निकलकर चले जाना उस समय कोई मुश्किल कार्य न था, क्योंकि उनके समय में यह मन्दिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था! सन् 1473 में गुजरात के सुलतान महमूद बेगड़ा ने मन्दिर को काफ़ी तोड़-फोड़ दिया था[37] और मीरा बाई के समय तक उसकी लगभग वैसी ही क्षति-ग्रस्त अवस्था थी।*[38] रात के समय कोई पहरे

---

* हरमन ग़ैत्ज़ लिखते हैं, "आज का विशाल द्वारकानाथ जी का मन्दिर अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सतारा के साहूकार गोपाल नायक ताम्बेकर द्वारा बनाया गया है। बड़ौदा

(शेष अगले पृष्ठ पर)

आदि की व्यवस्था न थी और वे कुछ सहानुभूतिपूर्ण भक्तों की सहायता से आसानी से निकलकर चली गयी होंगी।

मीरा बाई के ग़ायब होने का वर्ष 1546 माना जाता है, जब उनकी आयु 48 वर्ष की थी, परन्तु अपने कुछ पदों में वे अपना वर्णन करते हुए कहती हैं कि वे वृद्ध हो चुकी हैं और उनके केश श्वेत हो गये हैं। इससे यह अनुमान होता है कि मीरा बाई सन् 1546 के बाद तक जीवित रहीं और उन्होंने वह अवस्था पायी जिसे सही अर्थों में वृद्धावस्था कहा जा सकता है।

विद्वानों ने भाटों की बहियों से मीरा बाई की मृत्यु का विवरण प्राप्त करने की कोशिश की है। भाट राजस्थान के राज-परिवारों के जीवन की घटनाओं का विवरण लिखते रहते थे।* परन्तु मीरा बाई की मृत्यु के बारे में उनके लेख एक-दूसरे से भिन्न हैं।† डॉ. कल्याण सिंह शेखावत ने मीरा बाई के जीवन पर खोज करते हुए मेड़ता के राज-पुरोहितों की बहियों का निरीक्षण किया है। उनके अनुसार उनकी मृत्यु 1547 में द्वारका में हुई और उनका संस्कार द्वारका के पास बहनेवाली गोमती नामक एक छोटी-सी नदी के किनारे किया गया। डॉ. शेखावत इस लेख तथा गुजरात और राजस्थान में की गयी अपनी खोज के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि सन् 1547 में मीरा बाई की स्वाभाविक मृत्यु हुई।

मृत्यु के समय मीरा बाई का कोई राजनीतिक महत्व नहीं था। मेड़ता और मेवाड़ के राज-परिवार क़रीब-क़रीब बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक

(पिछले पृष्ठ के फ़ुट नोट का शेष)

संग्रहालय (म्यूज़ियम) में इससे पहले के पुराने मन्दिर का चित्र मौजूद है, जो महाराज अभय सिंह (जोधपुर, 1724 से 1748 ई.) द्वारा बनाये हुए मन्दिर का चित्र है, जिससे प्रकट होता है कि उस समय वह मन्दिर एक छोटा-सा साधारण भवन था। मीरा बाई के समय में तो यह और भी छोटी और मामूली इमारत थी।''

* भाटों के वंशजों ने उनकी बहियों को आज तक सँभालकर रखा हुआ है।

† लूनवा के भूरदान भाअ के अनुसार मीरा बाई की मृत्यु सन् 1546 में हुई, वे यह भी कहते हैं कि उनके मृत्यु-स्थान के बारे में कुछ पता नहीं है। रानी मंगा के भाटों ने मीरा बाई की मृत्यु का वर्ष 1548 तथा कुछ अन्य ने 1547 बताया।

मीरा बाई के प्रति उपेक्षापूर्ण ही रहे हैं।*[39] भाटों और राज-पुरोहितों के लेख विश्वसनीय नहीं माने जा सकते, क्योंकि वे उनकी मृत्यु के काफ़ी समय बाद लिखे गये होंगे। सम्भव है, उनकी मृत्यु की बात उन्होंने अपनी बहियों में तब दर्ज की हो जब समय बीतने पर उन्होंने महसूस किया कि वे इतनी महत्वपूर्ण हैं कि उनके बारे में राज-परिवारों के साथ कुछ लिखा जाये। भाट राजस्थान में रहते थे और जहाँ भी मीरा बाई की मृत्यु हुई, वहाँ से सम्भवतः बहुत दूर थे। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सुनी-सुनायी बातों के आधार पर है, सीधी जानकारी के आधार पर नहीं। फिर भी उनके लेखों से यह बात स्पष्ट होती है कि मीरा बाई की स्वाभाविक मृत्यु हुई।

आधुनिक विद्वान् मीरा बाई के परलोक-गमन की विभिन्न तारीख़ें मानते हैं। भाटों के साथ सहमत होते हुए कुछ विद्वान् उनकी मृत्यु का वर्ष 1546, 1547 या 1548 मानते हैं, जब कि कुछ अन्य अपनी खोज और निष्कर्ष के आधार पर उनकी मृत्यु के वर्ष 1563 से 1573 तक बताते हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है, चित्तौड़ छोड़ने के बाद मीरा बाई की जीवन-गाथा का आधार मूलतः परम्परा, जनश्रुति और मौखिक विवरण है। हरमन ग़ैत्ज़ ने द्वारका से ग़ायब होने के बाद मीरा बाई के जीवन का सूत्र जोड़ने की कोशिश की है, परन्तु वे मानते हैं कि उनके वर्णन का आधार "परिस्थिति-मूलक सबूत हैं, लिखित सबूत नहीं।"[40] उनके अनुसार द्वारका छोड़कर मीरा बाई उत्तर भारत में आयीं और यहाँ कई स्थानों में अपनी भक्ति और प्रेम का सन्देश देती हुईं, घूमती रहीं। चित्तौड़ के राणा उन्हें भूल चुके थे और परिपाटियों की कट्टरता तथा कर्मकाण्ड की बेड़ियों में जकड़े हुए लोग मीरा बाई के लुप्त हो जाने पर निश्चिन्त थे। न तो उन्होंने मीरा बाई को ढूँढ़ने की कोशिश की और न ही उन्हें इस ओर कोई रुचि थी। इस प्रकार वे उत्तर भारत में निर्विघ्न घूम सकती थीं और उनके आध्यात्मिक मार्ग में कोई बाधा डालनेवाला न था।

---

* श्रीमति पद्मावती शबनम द्वारा उद्धृत एक पत्र के अंश में भारतीय सन्त-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, "हाँ, इस बात की सूचना मुझे अपनी उदयपुर यात्रा के ही समय मिली थी कि वहाँ मीरा बाई के प्रति आदर भाव कम है। मुझसे इसकी चर्चा चित्तौड़ दुर्ग के रहनेवाले लोगों तक ने की थी।"

सन्देश

मीरा बाई का सन्देश

मीरा बाई का कोई शिष्य न था, क्योंकि उन्होंने किसी को दीक्षा नहीं दी। किसी अज्ञात मध्यकालीन कवि ने मीरा बाई की प्रशंसा करते हुए कहा है कि मीरा बाई का नाम अपने ही गुणों के लिए रहेगा क्योंकि उन्होंने न तो पुत्र को जन्म दिया और न ही किसी को शिष्य बनाया:

> नाम रहेगो काम से, सुनो सयाने लोय।*
> मीरा सुत जायो नहीं, शिश न कीयो कोय॥†

मीरा बाई का न कोई सांसारिक उत्तराधिकारी था और न ही आध्यात्मिक जो उनकी जीवनी और पदों को सुरक्षित रखता। अतएव उनके पद उनकी मृत्यु के कई साल बाद केवल मौखिक परम्परा के आधार पर लिखे गये हैं। यही कारण है कि वे व्यवस्थित रूप में, जिस क्रम से वे लिखे गये, उस क्रम में नहीं मिलते। इस प्रकार सीमित की पुजारिन मीरा का सीमित सगुण-भक्ति से उस असीम, तीनों गुणों की सीमा से परे, परमात्मा के भक्त बनने का प्रमाण उनके पदों में तो मिलता है, परन्तु इस परिवर्तन का उनके जीवन में समय और क्रम निश्चित नहीं किया जा सकता। कुछ पदों में मूर्ति-पूजा और तीर्थ, व्रत आदि की प्रशंसा और कुछ में इस प्रकार की बाहरमुखी क्रियाओं का स्पष्ट खण्डन, एक-दूसरे से विपरीत दो बातें हैं जिनके फलस्वरूप विद्वानों ने मीरा बाई के कुछ पदों को प्रामाणिक माना है और कुछ को नहीं। इस प्रकार के निर्णय करने का कोई स्पष्ट मापदण्ड न होकर मीरा बाई के बारे में उनके पूर्व-निर्णीत विचार ही रहे हैं। परन्तु मीरा बाई अपनी भक्ति के ध्येय और अपने आध्यात्मिक मार्ग को भली प्रकार जानती थीं। उनके जो

---

* **लोय**=लोग।

† **शिश**=शिष्य।

पद आज मिलते हैं, वे उनकी आध्यात्मिक उन्नति की विभिन्न अवस्थाओं के अनुभवों को प्रदर्शित करते हैं। परन्तु वे इतने मिल-जुल गये हैं कि उन्हें मीरा बाई के आत्मिक विकास के क्रम को सामने रखते हुए छाँटना आवश्यक है। पर ऐसा कर सकना सम्भव नहीं, क्योंकि बहुत-से पद मौखिक परम्परा से इकट्ठे किये गये हैं, और कभी-कभी ऐसा लगता है कि किसी-किसी पद के कुछ अंश दूसरे पदों से आ गये हैं। इसलिए पाठक को एक ही पद में भावों और विचारों का ही नहीं, बल्कि पद-सन्तुलन और तुकान्त तक का सहसा परिवर्तन मिलता है। प्रतीत होता है कि मीरा बाई की जीवन-गाथा के समान ही उनके पद भी रहस्य ही बने रहेंगे।

मीरा बाई द्वारा अपने जीवन के उत्तरार्ध में लिखे गये पदों के आधार पर अथवा, दूसरे शब्दों में, उन पदों के आधार पर जो एक विस्तृत दृष्टिकोण तथा ऊँचे रूहानी अनुभव प्रदर्शित करते हैं, मीरा बाई के सन्देश और अन्य सन्तों की शिक्षा में समानता स्पष्ट दिखायी देती है।

सभी सन्तों के समान मीरा बाई ने मनुष्य-जन्म को बहुत महत्त्व दिया है और मुक्ति की प्राप्ति के लिए इसे एक दुर्लभ अवसर माना है। वे कहती हैं कि नर-देह की प्राप्ति प्रभु का एक अनमोल प्रसाद है। इसे प्रभु-भक्ति में तत्परता के साथ लगाना चाहिए। यह भवसागर को पार करने के लिए एक नौका है:

दुर्लभ नर देही तमे तत्पर थाव।
भवसागर तरवा ने बेसवा ने नाव॥[1]

सन्त रविदास जी मनुष्य-जन्म को 'दुलभ'* तथा गुरु तेग़ बहादुर जी 'अमोलकु'† कहते हैं। कबीर साहिब के शब्दों में मनुष्य देह की प्राप्ति के लिए देवता भी तरसते हैं।‡

सृष्टि के आदि से आत्मा इस संसार में बार-बार जन्म ले रही है। आवागमन के इस सिद्धान्त का स्पष्ट संकेत मीरा बाई ने अपने पदों में किया है। एक पद

---

* दुलभ जनमु पुंन फ़ल पाइओ बिरथा जात अबिबेकै॥[2]

† मानस जनमु अमोलकु पाइओ बिरथा काहि गवावउ॥[3]

‡ या देही कूं लौचैं देवा, सो देही करि हरि की सेवा॥[4]

में वे राणा से कहती हैं, ''हे राणा, मैं इस संसार में पहली बार नहीं आयी हूँ; जब से यह ब्रह्माण्ड रचा गया है तभी से मैं यहाँ आ रही हूँ। इस जन्म में मैं मेड़ता परिवार में आयी हूँ, मुझे मीरा बाई नाम दिया गया है और राणा परिवार में ब्याही गयी हूँ। परन्तु आत्मा का न कोई परिवार है, न कोई नाम।''

आज काल की मैं नहिं राणा, जद यो ब्रह्माण्ड छायो॥
मेड़तियाँ घर जन्म लियो है, मीराँ नाम कहायो॥[5]

एक अन्य पद में इसी भावना को व्यक्त करते हुए मीरा बाई कहती हैं, ''मैंने चौरासी लाख का चूड़ा अनेक बार पहना है ... विभिन्न जन्मों में मैंने अलग-अलग पति पाये हैं। परन्तु अब मुझे बोध हो गया है कि मेरा सच्चा पति हरि है और मैं उसी के रंग में रँग गयी हूँ।''

लख चोरासी रो चूडलो, पेर्यो मैं कंई बार।
ओ तो पति देही को संगी, मो पति सिरजणहार॥
जनम जनम कीया वर केता, विषया ते नरनार।
मैं तो राची रंगलु रंगी, गोविंदो हरि भरतार॥[6]

चौरासी लाख योनियों में जीव के भ्रमण का वर्णन करते हुए गुरु अर्जुन देव जी* फ़रमाते हैं कि जीव ने कई जन्म कीड़ों और पतंगों के पाये; कई जन्म हाथी, मीन और हिरन के पाये; अनेक जन्मों में वह पक्षी और सर्प आदि योनियों में गया; कई जन्म बैल, अश्व आदि बना; दीर्घकाल के उपरान्त यह मनुष्य-देह प्राप्त हुई है। हे प्राणी, अब प्रभु से मिलने का उपाय कर, प्रभु से मिलाप का यही अवसर है।

---

* कई जनम भए कीट पतंगा॥ कई जनम गज मीन कुरंगा॥
कई जनम पंखी सरप होइओ॥ कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ॥
मिलु जगदीस मिलन की बरीआ॥ चिरंकाल इह देह संजरीआ॥[7]

सन्त नामदेव जी कहते हैं:

अनेक बार पसू ह्वै अवतरयो। लख चौरासी भरमत फिरयो॥
पायौ नहीं कहीं बिश्राम। सतगुर सरनि कह्यौ नहीं राम॥[8]

मनुष्य-जन्म का अनमोल अवसर प्राप्त हो जाने पर भी जीव तब तक प्रभु से मिलाप नहीं कर सकता जब तक वह किसी ऐसे पूर्ण पुरुष की सहायता और मार्ग-दर्शन प्राप्त न कर ले जो स्वयं रूहानी मंज़िलों को तय कर चुका है और परमात्मा से मिल चुका है। अपने एक पद में मीरा बाई प्रभु-मिलाप को आत्मा का विवाह बताती हैं। जब आत्मा का प्रभु रूपी पति से विवाह हो जाता है तो अन्य विवाहित आत्माएँ उससे पूछती हैं कि हे भाग्यशाली सुहागिन आत्मा, तू इतने दिन कुँवारी क्यों रही?

सुरता सवागण नार कुंवारी क्यूं रही।

मीरा बाई उनको उत्तर देते हुए स्पष्ट करती हैं कि आत्मा का विवाह अभी तक न हो सका अर्थात् प्रभु से उसका मिलाप न हो सका, क्योंकि उसे सतगुरु नहीं मिले:

सतगुरू मिलिया नांय कुंवारी बीरा यूं रही॥[9]

गुरु अमर दास जी इसी भाव को प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि आत्मा रूपी स्त्री चारों युगों में भी भटकती रहे, वह सतगुरु के बिना पति-मिलाप रूपी सुहाग को प्राप्त नहीं कर सकती, 'जुग चारे धन जे भवै बिनु सतिगुर सोहागु न होई राम॥'[10] दरिया साहिब मारवाड़ वाले फ़रमाते हैं, 'सतगुर मेरे किरपा कीनी, उत्तम बर परनाई।'[11]

सभी सन्तों के समान मीरा बाई इस बात पर ज़ोर देती हैं कि परमात्मा मन्दिरों, तीर्थों या जंगलों-पहाड़ों में नहीं रहता। वह शरीर के अन्दर है और अन्दर जाने पर ही मिल सकता है। वे बताती हैं कि सतगुरु ही शरीर के अन्दर वह दर्पण प्रकट करते हैं जिसमें प्रभु की झलक दिखायी देती है। घट के अन्दर के इस रहस्य को सतगुरु के सिवाय और कोई नहीं जानता। वे कहती हैं, "मेरे सतगुरु ने मेरे अन्दर का दर्पण प्रकट कर दिया जिसमें प्रभु की छवि दिखायी देती है, अब मैं इस आनन्द में मग्न हो ख़ुशी से नाचूँगी। मेरा प्रभु रूपी पति मुझे मिल गया, मैं सुहागिन हो गयी। सतगुरु के सिवाय और कोई घट के आन्तरिक भेद को नहीं जानता।"

सतगुरू मुकर दिखाया घट का, नाचूंगी दे दे चुटकी॥
... ...
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घटकी॥[12]

अपने एक गीत में मीरा बाई कहती हैं कि वे अपने प्यारे प्रभु की दासी बन गयी हैं। अब उन्हें काशी जाने की क्या ज़रूरत है? गंगा भी उनके शरीर में है और जमुना भी, और शरीर के अन्दर ही अविनाशी प्रभु का निवास है:

मैं तो हरि चरणन की दासी। अब मैं काहे को जाऊं कासी॥
घट ही में गंगा घट ही में जमना घट घट हैं अविनासी।[13]

दादू दयाल भी यही भाव प्रकट करते हैं:

(दादू) कोई दौड़े द्वारिका, कोई कासी जाहिं।
कोई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही माहिं॥[14]

इसी प्रकार कबीर साहिब कहते हैं:

जिस कारनि तटि तीरथि जाँहीं। रतन पदारथ घटहीं माहीं।[15]

कि जिस प्रभु रूपी अनमोल पदार्थ के लिए लोग तीर्थों और सरोवरों में भटकते फिरते हैं वह मनुष्य के शरीर में ही मौजूद है। साईं बुल्लेशाह का कथन है:

'बुल्लो शाह शौह अंदरौं मिलया, भुल्ली फिरै लोकाई।'[16]

कि उनको परमात्मा अपने शरीर के अन्दर ही मिला है। लोग व्यर्थ ही उसकी खोज में बाहर भूले फिर रहे हैं।

सन्तों ने मनुष्य-देह को हरि-मन्दिर तथा प्रभु का घर कहा है। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं, 'काइआ महलु मंदरु घरु हरि का तिसु महि राखी जोति अपार॥'[17]

इसी प्रकार मीरा बाई भी मनुष्य-शरीर को घर की संज्ञा देते हुए अपने प्रभु-मिलाप के अनुभव का वर्णन करती हैं, "हे सखी, आज मेरे आनन्द का कोई पार नहीं है, क्योंकि मैंने अपने घर में ही अपने प्रिय प्रभु को पा लिया है। मैंने उसे वनों में ढूँढ़ा, वृन्दावन में ढूँढ़ा और ब्रज आदि धर्म-स्थानों में ढूँढ़ा, परन्तु वह न मिला। शरीर रूपी महल के सातवें माले या मंज़िल में एक अजीब झरोखा है। मैंने प्रभु को वहीं पाया।"

आज सखि मोरे अनन्द भयो है, घर में मोहन लाधो री॥
बन जोई बृन्दाबन जोई। बिरज सब बाधो री॥
सतवे मलिये अजब झरोखे। वाहीतें हरिजी लाधो री॥[18]

गुरु अमर दास जी ने अपने पद 'काइआ कामणि अति सुआल्हिउ पिरु वसै जिसु नाले'[19] में फ़रमाया है कि मनुष्य के शरीर में अनेक लोक, खण्ड, ब्रह्माण्ड यहाँ तक कि स्वयं परमात्मा निवास करता है। लगभग यही भाव मीरा बाई अपने एक गुजराती शब्द में प्रकट करती हुई कहती हैं कि हे बन्धु, यह समझ लो कि तुम्हारा शरीर समुद्र के समान अनेक ख़ज़ानों से भरपूर है। अपने हृदय के कपाट खोलो और अन्तर में दिव्य-ज्ञान का दीप जलाओ। इस प्रकार काया में अनेक फुलवारियाँ हैं, जिनमें आत्मा रूपी मोर आन्तरिक संगीत पर नृत्य कर रहे हैं। इसी काया में मानसरोवर है जिसमें आत्मा रूपी हंस आनन्द से क्रीड़ा कर रहे हैं। इस शरीर में हाट अथवा बाज़ार है जिसमें आध्यात्मिक व्यापार करके अपार लाभ प्राप्त करो। मीरा बाई अपने प्रभु के गुणगान करती हैं और प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभु, मुझे सन्तों के चरणों में वास प्रदान करो:

तमे जाणी ल्यो समुद्र सरीखा, मारा वीरा रे,
आ दिल तो खोली ने दीवो करो रे, होजी॥
आरे काया मां छे वाडीओ रे होजी,
मांहे मोर करे छे झींगोरा रे॥
आ रे कायामां छे सरोवर रे होजी,
मांहे हंस तो करे छे कल्लोला रे॥

आ रे कायामां छे हाटडां रे होजी,
तमे वणज वेपार करोने अपरंपारा रे॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधरना गुण होजी,
देजो अमने संत चरणे वासेरा रे॥[20]

मीरा बाई ने नाम के महत्त्व और नाम-भक्ति का कई पदों में उल्लेख किया है। सन्तों के अनुसार नाम कोई लिखने, पढ़ने या बोलने में आ सकनेवाला शब्द या लफ़्ज़ नहीं है। नाम वह शक्ति है जिसने सम्पूर्ण सृष्टि और खण्डों-ब्रह्माण्डों की रचना की है और जो इन सबको आधार दे रहा है। सन्त कहते हैं कि नाम और परमात्मा दोनों एक हैं। सतगुरु अपने शिष्य की आत्मा को नाम के साथ जोड़ते हैं और नाम ही उसे आत्म-साक्षात्कार तथा परमात्मा की प्राप्ति की ओर ले जाता है। मीरा बाई इस दिव्य नाम तथा इसकी अपार शक्ति का वर्णन करते हुए कहती हैं, "हे प्रियतम, मैं तेरे नाम से मोहित हो गयी हूँ। मैंने सुना है कि नाम के अभ्यास से (अपने कर्मों के भार के कारण) पत्थर के समान भारी होते हुए भी जीव संसार-सागर से तर जाता है। ... यह महान् महिमामय नाम मुझे गुरु ने प्रदान किया है और इसके द्वारा मैंने तेरी प्रतीति प्राप्त कर ली है, तुझे पहचान लिया है।"

पिया तेरे नाम लुभाणी हो।
नाम लेत तिरता सुण्यां, जैसे पाहन पाणी हो। (टेर)
... ...
नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछाणी हो।
मीरा दासी रावली, अपणी कर जाणी हो॥* [21]

इसी विषय में मीरा बाई एक अन्य पद में कहती हैं, "नाम का गहरा अमिट रंग मुझ पर चढ़ गया है। मैंने इस अमृतमय रस का प्याला पी लिया है और मैं अन्तर में प्रवेश कर गयी हूँ। ... मेरा यह नशा चाहे कितने ही उपाय किये जायें कभी उतर नहीं सकता। मैंने नाम की मदिरा पी ली है और

---

* **रावली**=आपकी।

इसके फलस्वरूप अब सांसारिक रंग मुझे नहीं सुहाते।'' मीरा बाई कहती हैं कि हे प्रभु, तेरे नाम के द्वारा संसार के सभी कच्चे रंग उड़ जाते हैं।

यो तो रंग धताँ हि लाग्यो हे माय। (टेक)*
पिआ पियाला अमरत रस का, चढ़ गई घूम घुमाय।
यो तो अमल म्हारो कबहु नै उतरै, कोटन करो उपाय॥†
... ...
पिया पियाला नाम का रे, और न रंग सुहाय।
मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, काचो रंग उड़ जाय॥[22]

गुरु नानक देव जी ने नाम के रंग को कभी न उतर सकनेवाला मजीठी रंग कहा है। आप कहते हैं कि अगर अपनी देह को वास्तव में रँगना चाहते हो तो नाम का मजीठी रंग प्राप्त करो। इस रंग से रँगनेवाला व्यक्ति अर्थात् सतगुरु यदि रँग दे तो ऐसा रंग चढ़ जायेगा जैसा और कहीं दिखायी नहीं देता:

काइआ रंङणि जे थीऐ पिआरे पाईऐ नाउ मजीठ॥
रंङण वाला जे रंङै साहबु ऐसा रंगु न डीठ॥[23]

'सिध गोसटि' में गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

नामे राते अनदिनु माते नामै ते सुखु होई॥[24]

कि जो व्यक्ति नाम में लीन हो जाता है वह उसके रस में निरन्तर मस्त रहता है और सच्चे सुख को प्राप्त करता है। कबीर साहिब नाम रूपी अमल का वर्णन करते हुए कहते हैं, 'नाम अमल माता रहै, पियै अमी रस सार॥'[25] मीरा बाई भी नाम रूपी रस के आनन्द का उल्लेख करती हुई कहती हैं:

मैं अमली हरि नाम का म्हांने बायड़ आवे।‡
और अमल कईं काम को, चढ़न उतर जावे॥§ [26]

* **धता**=गहरा, पक्का।
† **अमल**=नशा; **कबहु**=कभी।
‡ **बायड़**=नशे की लहरें।
§ **चढ़न**=चढ़कर।

केवल सतगुरु ही नाम का वह दुर्लभ प्रसाद प्रदान कर सकते हैं जो मीरा बाई के शब्दों में आत्मा का सच्चा और असली धन है, जिसे न चोर चुरा सकते हैं और जो न ख़र्च करने से घटता है, बल्कि दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है :

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो॥ टेक॥
बस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर, किरपा कर अपनायो॥
... ...
खरचै नहिं कोइ चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥[27]

यह नाम मनुष्य के शरीर में एक दिव्य ध्वनि के रूप में प्रकट होता है। सन्तों ने इसका नाम, शब्द, बाणी, धुन आदि कहकर वर्णन किया है। यह बाइबल का 'वर्ड', क़ुरान शरीफ़ का 'कुन' और 'कलमा' तथा वेदों-शास्त्रों का 'नाद' और 'आकाशवाणी' है। मीरा बाई ने इस दिव्य संगीत अथवा शब्द का उल्लेख अपने कई पदों में किया है। वे कहती हैं कि सतगुरु ने मेरे अन्तर में वह शब्द प्रकट कर दिया है जिसकी मैं अंश हूँ* और मेरा ध्यान उसकी ध्वनि में लग गया है :

सतगुरू सबद लखाया अंसरी, ध्यान लगाया धुन में॥[29]

इस प्रकार वे कहती हैं कि मैं न पीहर में रहती हूँ न ससुराल में, मैं तो अपने सतगुरु के प्रदान किये हुए शब्द में वास करती हूँ :†

पीहर बसूँ न बसूँ सास घर, सतगुरु सब्द सँगाती।[31]

---

* आत्मा परमात्मा का अंश है और सन्तों के अनुसार शब्द और परमात्मा दोनों एक ही हैं। कबीर साहिब कहते हैं, 'कहै कबीर तैं सबद को परखि ले, सबद ही आप करतार भाई॥'[28]

† कबीर साहिब कहते हैं कि जब मुझे पूर्ण गुरु मिले तो उन्होंने मेरी सुरत अथवा आत्मा को शब्द में मिला दिया, 'कहै कबीर मिले गुरु पूरे, सबद में सुरत मिलाई॥'[30]

जब जिज्ञासु की आत्मा को सतगुरु अन्तर में शब्द की धुन के साथ जोड़ देते हैं तो आवागमन की विकट शृंखलाएँ टूट जाती हैं। मीरा बाई कहती हैं कि पूर्व जन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप मुझे सतगुरु का मिलाप प्राप्त हुआ है। मेरे सतगुरु अन्तर्यामी हैं। उन्होंने मुझे उस निर्भय शब्द को सुनने के योग्य बनाया और मेरे जन्म-मरण का दुःख दूर कर दिया।*

> सतगुरु सांमी अंतरजामी, वो पूरब पुन्न मिलायो॥
> जनम-मरण का सांसा मेट्या, वो निरभै सबद सुणायो॥[33]

इसी प्रकार उन्होंने अपने प्रभु गिरधर नागर को शब्द के सरोवर में समाकर प्राप्त किया है:

> मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सब्द सरोवर धँसी॥[34]

शब्द की यह दिव्य ध्वनि मनुष्य के शरीर में निरन्तर गूँज रही है। शब्द की दो विशेषताएँ हैं: प्रकाश और ध्वनि। मीरा बाई इनका स्पष्ट संकेत कर देती हैं, "गूँज रहा है, गूँज रहा है, तेरे शरीर में घड़ियाल गूँज रहा है, तेरे शरीर में दस दरवाज़े हैं, जहाँ नित्य नगाड़े की आवाज़ गूँज रही है। इसी काया में ज्योति जल रही है और उसके तेज की धाराएँ गूँज रही हैं:"†

> वागे छे रे वागे छे तारी काया मां घडीयाल वागे छे॥
> आरे काया ना दश दरवाजा, नित नी नौबत गाजे छे॥
> ... ...
> आरे काया मां जोत जले छे, तेजना बींबकार वागे छे॥[36]

---

* इसी भाव को कबीर साहिब इस प्रकार प्रकट करते हैं: 'सतगुरु सबद बिचारि ले, तो जुग जुग जीजै॥'[32]

† आन्तरिक मण्डलों में शब्द की आवाज़ और प्रकाश की ओर संकेत करते हुए पलटू साहिब कहते हैं:

> उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥
> ... ...
> निकसै एक अबाज चिराग की जोतिहिं माहीं।
> ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं॥[35]

धरती में हल चलाकर खेती करने और बीज बोने* के उदाहरण के द्वारा मीरा बाई नाम के अभ्यास, नाम के प्रकाश और आवाज़ का वर्णन करती हैं और बताती हैं कि शरीर में नाम कहाँ प्राप्त होता है। वे कहती हैं कि मेरी राम–नाम रूपी धन की खेती है और यह खेती करते हुए मेरी आत्मा प्रभु में लीन रहती है:

राम नाम धन खेती मेरी सुरतां प्रभु में रेती॥

उत्तर प्रदेश में गंगा और यमुना के बीच की भूमि बहुत उपजाऊ मानी जाती है। गंगा और यमुना के बीच के स्थान अर्थात् दोनों आँखों के बीच के केन्द्र की ओर इशारा करती हुई मीरा बाई कहती हैं कि यह स्थान नाम का बीज बोने के लिए उत्तम है। दोनों नदियाँ आँखों के केन्द्र से ऊपर की ओर जानेवाले दायें और बायें ओर के मार्ग हैं। इन दोनों मार्गों के बीच में अथवा दोनों आँखों के मध्य में अभ्यासी को अपना ध्यान एकत्रित करना पड़ता है। मीरा बाई कहती हैं:

एक साल मैंने खेती पाई, गंगा जमुना रेती॥
राम नाम का बीज पड़ा है, निपजत हीरा मोती॥

---

* कबीर साहिब भी नाम के अभ्यास की तुलना खेती से करते हुए कहते हैं:

सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय।
खंड ब्रह्मँड सूखा पड़ै, तहू न निस्फल जाय॥[37]

गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं कि मन को हाली बनाओ, करनी अथवा उत्तम रहनी को कृषि कर्म बनाओ, श्रम अथवा अभ्यास रूपी जल से सींचकर नाम रूपी बीज बोओ और सन्तोष रूपी सुहागा (पलटा) चलाओ। प्रेम के साथ ऐसी खेती करने से नाम रूपी बीज अंकुरित होकर फलीभूत होगा:

मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु॥
नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु॥
भाउ करम करि जंमसी से घर भागठ देखु॥[38]

मनुष्य के शरीर में आत्मा (अथवा मीरा बाई के शब्दों में हंस) का केन्द्र आँखों के पीछे तीसरा तिल अथवा तृतीय नेत्र है। शरीर के नौ द्वारों को ख़ाली करके आत्मा जब केन्द्र पर आती है तो वह एक उज्ज्वल प्रकाश देखती है, जिसे मीरा बाई ने इस पद में ज्योति कहा है:

भृकुटि मंडल में हंस बिराजे वहां दरशे एक जोती॥

इस स्थान पर पहुँचकर आत्मा शब्द के सम्पर्क में आती है। सुरत (आत्मा की सुनने की शक्ति) और निरत (आत्मा की देखने की शक्ति) के सहारे आत्मा यहाँ से ऊपर के मण्डलों की यात्रा पर चल पड़ती है। खेती के उदाहरण का क्रम जारी रखते हुए मीरा बाई कहती हैं कि आत्मा की सुनने और देखने की शक्तियाँ वे दो बैल हैं जिनको जोतकर वह खेती कर रही है। उनका तात्पर्य है कि आँखों के केन्द्र पर आने के बाद आत्मा सुरत और निरत के द्वारा शब्द की ध्वनि और प्रकाश का रस, जब चाहे तब लेती है:

सुरत निरत का बैल बनाया जब चाहै जब जोती।

आँखों के केन्द्र पर आने और शब्द की ध्वनि और ज्योति के साथ जुड़ जाने पर ही अभ्यासी के हृदय में प्रभु के लिए सच्चा प्रेम जाग्रत होता है। पद समाप्त करते हुई मीरा बाई कहती हैं कि इस अवस्था को प्राप्त करने पर ही उसके हृदय में हरि के चरणों की प्रीति उत्पन्न हुई:

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि के चरण पर प्रीति॥[39]

जैसा कि कहा जा चुका है, आत्मा के अपने निज-धाम की यात्रा में गुरु का बहुत महत्त्व है। दीक्षा अथवा नामदान के द्वारा वे अपने शिष्य को आत्मिक अभ्यास की विधि सिखाते हैं और अन्तर में उसे शब्द के साथ जोड़ते हैं। अब शिष्य आँखों के केन्द्र पर पहुँचकर अपनी आन्तरिक यात्रा शुरू करता है तो वहाँ गुरु अपने ज्योतिर्मय स्वरूप अथवा शब्द-स्वरूप में उसका मार्ग-दर्शन करते हैं और उसे विभिन्न मंज़िलों से ले जाते हुए सतलोक या प्रभु के धाम में पहुँचा देते हैं। नामदान को सन्तों ने शिष्य की

आत्मा का गुरु के घर में नया जन्म कहा है। मीरा बाई इस विचार को एक भारतीय पिता और पुत्री के रूपक द्वारा प्रकट करती हैं। जन्म के बाद कन्या को उसका पिता पालता-पोसता, पढ़ाता-लिखाता और सुसराल में एक अच्छी पत्नी बनने के योग्य बनाता है। पिता ही पुत्री के लिए अच्छा वर ढूँढ़कर उसका विवाह करता है। सन्तमत में, पिता के समान ही, गुरु अपने शिष्य की आत्मा की देखभाल करते हैं, उसकी सहायता और मार्ग-दर्शन करते हैं और अन्त में सतगुरु ही आत्मा का उसके असली पति, परमात्मा से मिलाप करवाते हैं। मीरा बाई कहती हैं कि सन्तों का समुदाय ही उसका पीहर है अर्थात् सन्त-सतगुरु ही उसके पिता हैं और उसका ससुराल अर्थात् पति का घर सतलोक है:

सासरियो सतलोक में, पीहरियो साधां मांय॥

मीरा बाई आगे कहती हैं कि अपने प्यारे प्रभु के बग़ैर वह रह नहीं सकतीं और गुरु के बिना इस संसार-सागर को तरकर हरि के पास पहुँच नहीं सकतीं:

हरि बिना रह्यो न जाय, गुरां बिना तरियो न जाय।[40]

पूर्व और पश्चिम के सन्तों-महात्माओं का कथन है कि मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है, चाहे वे कर्म अच्छे हों या बुरे। विधि का यही विधान है कि जो जैसा बोयेगा वह वैसा ही काटेगा। जीव को अपने कर्मों का फल भुगतने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ता है और उसके अच्छे कर्म भी उतने ही बन्धनकारक होते हैं जितने कि बुरे। यह कार्य और कारण का नियम कर्म-सिद्धान्त कहलाता है, जो अटल है और सम्पूर्ण रचना इसके अधीन है। मीरा बाई अपने पदों में कर्मों के सिद्धान्त का उल्लेख करती हैं कि इस संसार के सभी सगे-सम्बन्धी केवल पिछले कर्मों के फलस्वरूप साथ हैं; अतएव कुल, परिवार आदि के बन्धन अर्थहीन हैं। हम संसार में देखते हैं कि एक ही माता के दो पुत्रों के कर्म अलग-अलग होने की वजह से उनका जीवन एक-दूसरे से भिन्न होता है। एक तो सिंहासन

पर बैठता है और दूसरा हल चलाकर अपना पेट भरता है। ... इस जगत् में हमारे सभी मेल-जोल कर्मों की वजह से हैं, अन्यथा जग में वास्तव में हमारा कोई नहीं है :

राणाँजी कर्मों रो सँगाती, कुल में कोई नहीं। (टेक)*
एक तो माता रै दोय दोय डीकरा, ज्यांकी न्यारी न्यारी भाँत†
वाँकी न्यारी न्यारी करमां रेष।
राणाँ... ॥
एक तो राजाजी री गद्दी बैठिया, दूजो हल 'र बैल भरतो पेट।‡
राणाँ... ॥[41]

एक अन्य छोटे गीत में मीरा बाई कर्म-सिद्धान्त को समझाते हुए कहती हैं कि इस संसार में जीवन थोड़े समय के लिए ही है, इसलिए क्यों सांसारिक जंजालों में उलझा जाये? माता-पिता ने तो जन्म दिया है, परन्तु सृष्टि की रचना करनेवाले ने हमें कर्मों के बन्धन में बाँध दिया है। जो कुछ हम उपभोग करते हैं, ख़र्च करते हैं और परोपकार करते हैं उन सबका फल हमें मिलेगा। जो कुछ हमने दिया है या लिया है उसका हिसाब ही हमारे साथ जायेगा, इसके सिवाय संसार की और कोई वस्तु साथ नहीं जायेगी। मीरा बाई कहती हैं कि यही हमारा प्रभु की भक्ति करने का अवसर है और भक्ति के द्वारा ही हम भवसागर को पार कर सकेंगे :

जग में जीवणा थोड़ा राम कुण करे रे जंजार॥
मात पिता तो जनम दियो है, करम दियो करतार।
कइरे खाइयो कइरे खरचियो, कइरे कियो उपकार॥
दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नहीं तेरी लार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरो भव पार॥[42]

---

* **सँगाती**=साथी।

† **डीकरा**=पुत्र।

‡ **हल 'र बैल भरतो पेट**=हल में बैल जोतकर गुज़ारा करता है।

मन और माया परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में दो प्रबल रुकावटें हैं। मन की रुचि संसार के पदार्थों और विषय-भोगों की ओर है और वह उन्हीं के पीछे भागता रहता है। वह कभी स्थिर होकर नहीं बैठता, हमेशा कुछ न कुछ सोचता रहता है, हमेशा सांसारिक वस्तुओं व शक्लों का चिन्तन करता रहता है। वह अपनी अस्थिरता और निरन्तर भटकते रहने की आदत तभी छोड़ता है, जब उसे संसार के नाशवान् सुखों से अधिक उत्तम सुख और अविनाशी आनन्द प्राप्त हो जाये। यह आनन्द, नाम या शब्द की दिव्य ध्वनि को सुनने और अन्तर में उसके साथ जुड़ने पर ही प्राप्त होता है।* मीरा बाई कहती हैं कि उनका मन, जो जन्मों-जन्मों से आत्मिक आनन्द से अनजान और प्रभु की ओर से सोया हुआ था, सतगुरु के दिये हुए शब्द को सुनकर जाग्रत हो उठा:

जनम जनम का सोया मनुआ सतगुररु शब्द सुन जागा॥[44]

मन की हठी और उच्छृंखल प्रवृत्ति की तुलना एक मदमत्त हाथी की वृत्ति से करती हुई मीरा बाई सतगुरु से प्रार्थना करती हैं कि वे अपना हाथ अंकुश के समान उनके सिर पर रखें ताकि वे मन को वश में कर सकें:†

यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुरू हाथ धरौ सिर ऊपर, आँकुस दै समझाती॥[47]

---

* गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'नाम रंगि इहु मनु त्रिपताना बहुरि न कतहूं धावउ रे॥'[43]

† गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं कि मन हाथी के समान काया रूपी उद्यान में उच्छृंखल हो भटक रहा है। गुरु द्वारा दिये गये सच्चे शब्द रूपी अंकुश से उसे वश में किया जा सकता है:

मनु कुंचरु काइआ उदिआनै॥ गुरु अंकसु सचु सबदु नीसानै॥[45]

गुरु राम दास जी कहते हैं कि मन प्रति-पल विभिन्न प्रकार के भ्रमों के पीछे बाहर दौड़ता है, वह निज-घर अथवा आँखों के केन्द्र में स्थित होकर नहीं बैठता। गुरु उसके मस्तक पर शब्द रूपी अंकुश रखकर उसे इस केन्द्र (घर) का वासी बना देते हैं:

मनु खिनु खिनु भरमि भरमि बहु धावै तिलु घरि नही वासा पाईऐ॥
गुरि अंकसु सबदु दारू सिरि धारिओ घरि मंदरि आणि वसाईऐ॥[46]

दीर्घकाल तक निरन्तर विषय-सुख में डूबे तथा संसार के पदार्थों के मोह-जाल में उलझे रहकर मन ने अपने ऊपर मैल की परतें जमा ली हैं। मीरा बाई कहती हैं कि गुरु वह कुशल धोबी है जो मन की समस्त मलिनताओं को धो देता है।* परमात्मा की स्मृति के साबुन और प्रीति रूपी जल से गुरु अपने शिष्य के मन को धो डालता है। इस प्रकार स्वच्छ होने के बाद शील आदि गुणों को संजोकर मन निर्मल हो जाता है और फिर कभी मैला नहीं होता:

> धोयाँ न मैला होय, हरिजन धोबिया मन धोय॥
> ... ...
> सूरत साबू प्रीत जल से, कमियाँ शील संजोय।
> ऐसी धोवट धोय धोबिया, फेर ना मैला होय॥[51]

माया, और साथ ही तृष्णा भी, अभ्यासी के आध्यात्मिक मार्ग में बहुत बड़ी रुकावटें हैं। भारतीय दुलहन का अपना प्रिय रूपक लेकर मीरा बाई परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में आनेवाली इन बाधाओं का उल्लेख करती हैं। नव-वधू अपने पति से मिलने जाना चाहती है, परन्तु मीरा बाई के समय के रिवाज के अनुसार उसे अपने पति के कमरे में अकेले और बिना किसी को मालूम हुए जाना है। पर उसके मार्ग में दो बाधाएँ हैं, पहली तो है उसकी सास (माया) जो छत पर सो रही है और दूसरी है उसकी ननद (तृष्णा) जो दालान में सो रही है। अपने पति के कमरे में जाने का मार्ग चौबारे (मनुष्य-शरीर) और छत (आँखों के केन्द्र अथवा तीसरे तिल) से होकर जाता है:

---

* गुरु को स्वामी जी महाराज (स्वामी शिवदयाल सिंह जी) भी मन और आत्मा को धोनेवाला धोबी कहते हैं:

> चुनर मेरी मैली भई। अब का पै जाऊँ धुलान॥[48]
> धुबिया गुरु सम और न कोय। चदरिया धोई सूरत जोय॥[49]

कबीर साहिब फ़रमाते हैं:

> गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
> सुरत सिला पर धोइये, निकसै रंग अपार॥[50]

सासू सूती परसाल ननद चोबारा॥
म्हारा पिवजी महल रे मांय जगाय लीज्यो रे॥

मीरा बाई के शब्दों में दुलहन की सखी उसे सलाह देती है कि हे परमात्मा की प्यारी वधू, तुझे अपने प्रियतम को जगाना ही चाहिए:

हर की प्यारी रे म्हें थांरा पिव ने जगायो।

पद के अन्त में मीरा बाई कहती हैं कि हे भ्रमों में सोये हुए प्राणी, जागो; मैं तो जागकर अपने प्रियतम के पास चली गयी और मेरे सभी भ्रम दूर हो गये:

केवे मीराँ दास सुता नर जागो।
मैं तो गया री सांवरिया री लार भरम सभी भागो॥[52]

सन्तों ने हमेशा सत्संग की महिमा की है। आन्तरिक रूहानी मण्डलों में गमन करनेवाले तथा परमात्मा का मिलाप प्राप्त कर चुके महात्मा की संगति को सन्त सच्चा सत्संग कहते हैं। निरन्तर बाहर भटकनेवाला मन सत्संग के द्वारा ही वश में आता है और धीरे-धीरे परमात्मा के रंग में रँग जाता है। अपने एक गुजराती पद में मीरा बाई कहती हैं, "आज मुझे सन्तों का संग मिला है, मेरे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है। हमेशा सन्तों का संग करना चाहिए, क्योंकि उनकी संगति में परमात्मा के प्रेम का रंग चौगुना चढ़ता है। साकत अर्थात् दुष्ट लोगों की संगति कभी नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे आध्यात्मिक अभ्यास में बाधा आती है। सन्तों के चरणों में अड़सठ तीर्थों का फल है, उनके चरण करोड़ों काशी और करोड़ों गंगा से कहीं अधिक पवित्र हैं। ... मीरा बाई कहती हैं कि उन्होंने अपने प्रभु के गुणों का ज्ञान सन्तों की संगति से ही पाया है और वे हमेशा सन्तों के चरण-कमलों की धूलि चाहती हैं:

आज मारे साधु जननो संग रे राणा, मारां भाग्य भल्यां रे॥
साधु जननो संग जो करीए पियाजी, चड़े ते चोगणो रंग रे॥

साकुट जननो संग न करीए जी, पिया जी पाडे भजन मां भंग रे॥
अडसठ तिरथ संतों ने चरणे पियाजी कोटि काशी ने कोटि गंगरे॥[53]

एक अन्य गीत में मीरा बाई कहती हैं कि हे मनुष्य, तू सत्संग के रस को ग्रहण कर, तू सत्संग के रस को चख। केवल दो घड़ी के सत्संग से मुक्ति प्राप्त हो सकती है, वेद आदि धर्म-ग्रन्थ इसके साक्षी हैं:

सत्संग नो रस चाख प्राणी, तुं तो सत्संग नो रस चाख॥
... ...
सत्संगथी बे घड़ीमां मुक्ति, वेद पुरे छे साख॥[54]

स्वयं सत्संग के गहरे रंग में रँगी हुई मीरा बाई आनन्द के साथ गाती हुई कहती हैं, "सन्त ही मुझे प्रिय हैं, वे ही मेरे अपने हैं। मैं सन्तों की हूँ और सन्त ही मेरे जीवन और प्राण हैं। मीरा बाई सन्तों की संगति में इस प्रकार समा गयी हैं जिस प्रकार मक्खन में घी समाया रहता है":

साधु हमारे हम साधुन के, साधु हमारे जीव।
साधुन मीराँ मिल रही है, जिमि माखन के घीव॥[55]

सभी सन्तों-महात्माओं के आन्तरिक रूहानी अनुभव समान होते हैं, चाहे वे पूर्व में हुए हों चाहे पश्चिम में। नामदेव जी, कबीर साहिब, पलटू साहिब और अन्य सन्तों के समान ही मीरा बाई भी कुछ पदों में अपने आन्तरिक अनुभवों का वर्णन करती हैं। वे कहती हैं, "हे सखी, गगन मण्डल दिव्य संगीत की ध्वनि से गूँज रहा है। ऐ मेरी आत्मा, बिना झालर के होनेवाली झंकार को सुन। सुन्न* के शिखर पर दीपक जगमगा रहा है। ऐ मेरी आत्मा, वह बिना बत्ती और बिना तेल के निरन्तर जल रहा है।"

गगन मंडल बाजा बजै ए।
हे म्हारी सुरता बिन झालर झणकार॥

---

* **सुन्न**=आत्मा की आन्तरिक मण्डलों की यात्रा में तीसरी मंज़िल।

सोवन शिखर दिवलौ जगै ए।*
हे म्हारी सुरता बिन बाती बिन तेल॥[56]

अन्य सन्तों ने भी लगभग इसी प्रकार अपने आन्तरिक अनुभवों का वर्णन किया है। इनसान के सिर को 'उलटा कुआँ' की संज्ञा देते हुए पलटू साहिब कहते हैं कि वहाँ पर बिना बाती और बिना तेल के निरन्तर दीया जल रहा है।† आन्तरिक ज्योति और शब्द का वर्णन करते हुए कबीर साहिब कहते हैं कि आन्तरिक मण्डलों का रहस्य कोई अनुभवी साधक ही जानता है। वहाँ बग़ैर बादल के बिजली चमकती है, बिना सूर्य के प्रकाश हो रहा है तथा बिना किसी वाद्य और स्वर के शब्द की धुन गूँज रही है।‡ आन्तरिक मण्डलों के दिव्य आनन्द का वर्णन करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि भँवरगुफा में भ्रमर (अर्थात् आत्मा) आनन्द से दिव्य पुष्पों पर उड़ रहे हैं, वे पुष्प जिनकी सुगन्ध के रस में भ्रमर लीन हैं। भँवरगुफा में आत्मा रूपी स्त्रियाँ ख़ुशी से झूल रही हैं, वे स्त्रियाँ जिन्होंने पाँच तत्त्व के घट अथवा देह में ज्ञान का दीपक जलाया है। मेरे दोनों नेत्र सबकुछ भूलकर अपने प्रियतम को देख रहे हैं। निरन्तर भटकते रहने से उत्पन्न निद्रा अथवा थकान दूर हो गयी है और मेरे प्रियतम मुझसे सीधे वार्तालाप कर रहे हैं:

भँवर गुफा रे मांय भंवरा भंव रीया।
ज्यांरी महक महक आवे बास भंवर रंग भींजे॥

---

* **सोवन शिखर**=सुन्न का शिखर।

† उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती॥[57]

‡ महरम होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा॥
... ...
बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उँजियारा।
बिना सीप जहँ मोती उपजै, बिन सुर सब्द उचारा॥[58]

दीपक देखा गैब का, बिन बाती बिन तेल॥[59]

भँवर गुफा रे मांय नारयां झूले।
ज्यांरे पांच(तत्व) तंत घट मांय दिवलो संजोयो॥
मगन होया दोइ नैण पिया पल खोले।
भटकत उड़ गई नींद, पिया मुंडे बोलो॥[60]

मीरा बाई के प्रायः सभी पदों में प्रेम और विरह की धारा बह रही है। उनका अपना जीवन अपने प्यारे सतगुरु और परमात्मा के वियोग की पीड़ा की एक लम्बी कथा है। मीरा बाई के अनुसार यह प्रेम और विरह उनके अपने सतगुरु के प्रसाद के रूप में प्राप्त हुआ है। वे कहती हैं, ''मेरे सतगुरु ने मुझे दिव्य प्रेम के उस बाण से मारा है जो विरह में बुझा हुआ है।''

भर मारी रे बाना मेरे सतगुरु बिरह लगाय के॥[61]

प्रभु-मिलन के मार्ग में प्रेम अगुआ बनकर आता है और उसी के पीछे-पीछे आती है विरह की वेदना। विरह की पीड़ा तथा प्रियतम से मिलाप प्राप्त करने की व्याकुलता ही प्रभु-प्रेम को बढ़ाती और दृढ़ करती है। मीरा बाई कहती हैं कि अपने विरह के आँसुओं से सींचकर ही उन्होंने प्रेम रूपी बेल को विकसित किया है और वह बेल फैलकर उनके तन, मन और प्राणों पर छा गयी है। अपने एक लोकप्रिय पद में वे कहती हैं:

अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणंद फल होई॥[62]

प्रभु से मिलाप के मीरा बाई के गीत मधुर भावनाओं से परिपूर्ण हैं। उनकी प्रफुल्लता और गहनता उनकी भक्ति की कोमलता का पुट पाकर और भी चित्ताकर्षक हो गयी है। एक पद में मीरा बाई वर्षा ऋतु में प्रकृति के हरे-भरे होने और सूखे सरोवरों के भर जाने का आधार लेकर प्रभु-मिलाप के अपने आनन्द का वर्णन करती हुई कहती हैं कि मेह अब चाहे कितना ही बरसता रहे, मुझे चिन्ता नहीं क्योंकि आज प्रियतम मेरे घर आये हुए हैं। आकाश में मेघ घिर आये हैं और नन्हीं-नन्हीं बूँदें बरस रही हैं। गर्मी की

तपन से सूखे हुए सरोवर भर गये हैं। इसी प्रकार बहुत दिनों की विरह-ताप के बाद मैंने अपने प्रियतम को पाया है। अब मुझे केवल उनसे फिर बिछुड़ जाने का भय है। मेह चाहे कितना ही बरसे। आज तो मेरे प्रियतम घर आये हुए हैं:

मेहा बरसवो करे रे, आज तो रमैयो मेरे घरे रे।
नान्हीं नान्हीं बूँद मेघ घन बरसे, सूखे सरवर भरे रे॥
बहुत दिनाँ पे प्रीतम पायो, बिछुड़न को मोहिं डर रे।
मेहा बरसवो करे रे, आज तो रमैयो मेरे घर रे॥[63]

इसी प्रकार एक सरल किन्तु भावपूर्ण गुजराती पद में मीरा बाई अपने प्रेम की अनन्यता इस प्रकार प्रकट करती है, ''मेरे प्यारे प्रभु ने आज मुझे हृदय से लगा लिया है, अब मैं एक पल के लिए भी उनसे अलग नहीं होऊँगी। प्रभु को मैंने स्नेह के बन्धन में बाँध लिया है और अब मैं प्रेमपूर्वक उन्हीं का गुणगान करूँगी। अपने नाथ के सुन्दर नयनों पर मैं तो बार-बार वारी जाती हूँ; अपने प्रियतम पर मैं बार-बार बलिहारी जाती हूँ, उन पर मैं अपना सर्वस्व न्योछावर करती हूँ:

मारा नाथनां नैणाँ ऊपर रे हुं। तो घड़ीये वारी जावूं।
घड़ीये वारी जावूं वालिड़ा हुं। तो घड़ीये वारी जावूं॥
... ...
प्रभुजी मने कंठे वलग्या। पलकोरे न थावूं।
शामला साथे स्नेह बंधाणो। हेते हरि गुण गावूं॥[64]

प्रेम अतिरेक और विरह की तीव्रता ने मीरा बाई के पदों को अत्यन्त मर्मस्पर्शी बना दिया है। मिलाप के आनन्द और वियोग की पीड़ा की जो अभिव्यक्ति मीरा बाई ने की है, वह कवि कल्पना की उड़ान नहीं है और न ही काव्य-सौन्दर्य का कोई कृत्रिम प्रयास है। उनके पद उनके अपने अनुभव हैं, अपने आप-बीते सुख-दु:ख के वृत्तान्त हैं, उनकी अपनी आन्तरिक भावनाओं का अनायास उद्वेग हैं। उनके काव्य की गहनता और साथ ही

अनूठी सरलता केवल हृदय-स्पर्शी ही नहीं, प्रेरक भी है। अपने इन गुणों के लिए उनका अपने समकालीन भक्त कवियों में बहुत ऊँचा स्थान है। उनके विरह के पद भक्तों में ही नहीं, घर-घर में लोकप्रिय हैं। भावनाओं की गहराई के साथ-साथ वाणी के लालित्य ने उनके काव्य को अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया है। ये विशेषताएँ मीरा बाई के सभी पदों में मिलती हैं।

अपने एक मधुर पद में मीरा बाई कहती हैं, "प्रियतम की मनोहर छवि मेरे हृदय में तीर की भाँति चुभकर समा गयी है। अपने प्रियतम के बिना मैं इन प्राणों को कैसे रख सकूँगी, क्योंकि प्रियतम ही मेरे जीवन की रक्षा करनेवाली अथवा विरह-ताप को दूर करनेवाली जड़ी हैं। मीरा बाई कहती हैं कि मैं अपने प्रभु के हाथों बिक चुकी हूँ अर्थात् अपना सबकुछ उनके चरणों पर न्योछावर कर चुकी हूँ। जब से मेरे स्वामी ने मुझे अपने दर्शन प्रदान किये हैं तब से उन्हीं को देखते रहने की लालसा मेरे नेत्रों की टेव (आदत) ही हो गयी":

> चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी॥
> कैसे प्राण पिया बिन राखूं, जीवण मूर जड़ी॥
> ... ...
> मीराँ प्रभु के हात बिकानी, लोग कहे बिगडी॥
> नैणा मोरे बाण पड़ी, साँईं मोहि दरस दिखाई। (टेर)[65]

मीरा बाई के पदों में विरह की वेदना का बड़ा सहज किन्तु करुण वर्णन मिलता है। अपने एक प्रसिद्ध पद में वे कहती हैं कि विरह में उनकी पीड़ा ऐसी है कि न तो प्राण रहते हैं न निकलते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें चैन कैसे मिल सकता है? उनकी हालत ऐसी है मानों सूली पर उनकी सेज बिछी हुई है जिस पर आराम से सोना कैसे हो सकता है? मनुष्य के शरीर में परमात्मा दोनों आँखों के पीछे आत्मिक मण्डलों में निवास करता है। जब तक आत्मा नौ द्वारों को ख़ाली करके उस स्थान पर नहीं पहुँचती, वह प्रभु से कैसे मिल सकती है? इस भाव को व्यक्त करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि प्रियतम की सेज तो गगन-मण्डल पर है और वह स्वयं धरती (अर्थात् नौ द्वारों) पर

हैं; वे मिलाप के सुख को कैसे प्राप्त कर सकती हैं? गीत की टेक में मीरा बाई कहती हैं कि हे सखी, मैं प्रभु के प्रेम में आत्म-विस्मृत और दीवानी हो गयी हूँ। मेरे वियोग की वेदना को कोई नहीं जानता। इसी पद में मीरा बाई आगे कहती हैं कि एक घायल की अवस्था को वही जान सकता है जिसे ऐसे मर्मान्तक घाव लगे हों; या वह जानता है जिसने विरह रूपी बाण से उनके हृदय को बेंधा है। ... जिस प्रकार एक घायल पशु वन-वन भटकता रहता है वैसे ही मीरा बाई अपनी वेदना में वन-वन डोल रही हैं; उन्हें कोई ऐसा उपचार करनेवाला वैद्य न मिला जो उनकी असह्य पीड़ा को दूर कर सके। पद के अन्त में मीरा बाई कहती हैं कि उनकी व्यथा का अन्त तो तभी होगा जब स्वयं उनके प्रियतम वैद्य के रूप में आकर उनका उपचार करेंगे:

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोना होय।
गगन मंडल पर सेज पिया की, किस विध मिलना होय।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहर की गति जौहर जानै,की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूं, बेद मिला नहिं कोय।
मीरां की प्रभु पीर मिटैगी, जद बैद सांवलियां होय।[66]

मीरा बाई अपनी वियोग वेदना में व्याकुल हो कहती हैं, "यदि मैं जानती कि प्रेम करने में इतने दुःख का सामना करना पड़ता है तो मैं सभी को चेतावनी दे देती और कहती कि कोई प्रेम न करे":

जौ हूं ऐसी जाणती रे वाला, प्रीत कियाँ दुःख होय।
नगर ढंढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय॥[67]

वियोग की कठिन पीड़ा और अपनी आहों और आँसुओं के बावजूद भी मीरा बाई प्रेम के पथ को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। वे अपने सतगुरु के दर्शन के लिए, उनकी सुन्दर छवि की एक झलक के लिए निरन्तर तरसती और याचना करती हैं, परन्तु वे हठ नहीं करतीं कि उनकी प्रार्थना स्वीकार

की ही जाये। एक सच्चा प्रेमी, केवल वही चाहता है जो उसके प्रियतम को भाये, वह अपने प्रियतम की इच्छा में प्रसन्न रहता है। वह अपने आपको उनकी इच्छा पर न्योछावर कर देता है। मीरा बाई अपने पदों में बार-बार प्रभु से अपने सतगुरु के चरणों की शरण माँगती हैं। शरण, प्रेम का एक आवश्यक अंग है। सतगुरु से अपनी प्रार्थनाओं में वे इस संसार के भयानक सागर से पार किये जाने की याचना करती हैं, परन्तु साथ ही कहती हैं यदि वे उचित समझें तो ही ऐसा करें। शरण की यह भावना मीरा बाई के पदों में कई स्थानों पर मिलती है। अपने निन्दकों को उत्तर देते हुए वे कहती हैं कि उन्हें गुरु के रूप में सन्त रविदास मिल गये हैं जिन्होंने उन्हें सच्चे ज्ञान का भेद प्रदान किया है। ... अब वे अपने महान् गुरु की शरण में रहेंगी और अपने मन, अहंकार आदि को लुटाकर (अर्थात् त्यागकर) उनके चरणों में नत होंगी:

> गुरु मिलिया रैदासजी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी।
> ... ...
> परम गुराँ के सरन मैं रहस्याँ, परणाम कराँ लुटकी।[68]

मीरा बाई का एक लोकप्रिय पद, जिसमें वे अपने सतगुरु को 'जोगी' कहकर पुकारती हैं, उनके प्रेम की कोमल संवदेनशीलता के साथ ही गहरी उत्कण्ठा प्रकट करता है। वे कहती हैं, "हे जोगी, तू मुझे छोड़कर मत जा, मैं तेरे चरणों में गिरकर याचना करती हूँ कि तू मत जा: 'जोगी मत जा, मत जा, पाँव परूँ मैं तेरे'।" परन्तु यदि सतगुरु उसको छोड़कर जाते ही हैं तो मीरा बाई प्रार्थना करती हैं, "तेरी प्रीति और भक्ति का मार्ग मेरे लिए अनजाना और कठिन है, जाने से पहले मुझे उस पार लगा जा: 'प्रेम-भक्ति को पैंडो ही न्यारो, हम कूं गैल लगा जा'।"

यदि गुरु के लिए यह करना भी सम्भव नहीं है तो मीरा बाई उनके चरणों में एक और प्रार्थना करती हैं, "हे प्रभु, मैं अपने लिए अगर, चन्दन आदि की चिता तैयार करती हूँ, तू जाने से पहले उसे अपने हाथ से जला जा: 'अगर चन्दन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा'।" क्योंकि मीरा बाई सोचती हैं कि यदि उनके सतगुरु उन्हें छोड़कर जाते हैं तो वे जीवित न

रह सकेंगी। देह-स्वरूप सतगुरु की प्रत्यक्ष उपस्थिति में हमेशा मौजूद रहने की भावना को मीरा बाई इस प्रकार प्रकट करती हैं, "जब मैं जलकर भस्म हो जाऊँ तो उस भस्म को अपने शरीर पर लगा लेना: 'जल बल भई भसम की ढेरी, अपने अंग लगा जा'।"

सच्चा प्रेम अपने व्यक्तित्व को प्रियतम के व्यक्तित्व में खो देना है, उसके साथ एक हो जाना है। परमात्मा में समा जाना ही प्रभु-प्रेम का लक्ष्य है। अपने पद को समाप्त करते हुए प्रियतम के साथ एक हो जाने की उत्कण्ठा को प्रकट करते हुए वे कहती हैं, "हे प्रभु, कृपा करके मेरी ज्योति को अपनी ज्योति में समा ले: 'मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर जोत में जोत मिला जा'।"

अन्य सन्तों की तरह मीरा बाई ने भी अपनी वाणी में विभिन्न भाषाओं के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया है। हिन्दी और गुजराती के अतिरिक्त उन्होंने ब्रज, अवधी, मारवाड़ी तथा राजस्थान की अन्य भाषाएँ, भोजपुरी, मैथिली, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी और पंजाबी तक के शब्दों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग किया है। बंगाल में उनके गीत बहुत लोकप्रिय हैं। महाराष्ट्र में तुकाराम जैसे सन्त कवियों ने मीरा बाई का उल्लेख बड़े आदर के साथ किया है और महाराष्ट्र के सन्तों तथा भक्तों की काव्यमय जीवनी लिखनेवाले कवि महीपति ने मीरा बाई की प्रचुर प्रशंसा की है।

फिर भी काव्य-कौशल, छन्द, मात्रा आदि की शास्त्रीयता, अलंकारों की विशद योजना और काव्य-सिद्धान्त की दृष्टि से मीरा बाई की गणना मध्यकालीन भारत के महान् कवियों में नहीं की जा सकती। परन्तु अपने निश्छल, सहज भावावेग के लिए, अपनी स्वतः स्फूर्त, अनायास अभिव्यंजना के लिए, अपनी भव्य रचना की सरल किन्तु ललित शब्दों में अभिव्यक्ति के लिए, अपने पदों की अकृत्रिम सरसता और गीतात्मकता के लिए, उपमाओं के प्रांजल तथा लावण्यमय प्रयोग के लिए, अपने गीतों की प्रेरक भावप्रवणता के लिए, अपने प्रेम की मधुर किन्तु ओजस्वी व्यंजना के लिए और इन सबसे बढ़कर अपने प्रियतम से वियोग की दारुण व्यथा को मृदु करुणा के साथ ही मर्म-भेदी प्रखरता सहित अपने पदों में साकार करने के लिए मीरा बाई के समकक्ष शायद ही कोई भक्त कवि आता है।

मीरा बाई के
कुछ संकलित पद

प्रभु मुझे पार उतार

मनुष्य के अपने पिछले कर्मों की बेड़ियाँ ही उसे स्थूल संसार में बाँधे रखती हैं। कर्म ही उसके जन्म-मरण के अनादि काल से चल रहे चक्कर का कारण हैं। इस दु:ख-दर्द के संसार में कहीं भी सच्चा और स्थायी सुख नहीं है। मीरा बाई परमात्मा से प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभु, इस शोक और संताप के सागर से मुझे पार ले चल:

हरि मने पार उतार, नमी नमी विनती करूं छुं॥*
जगत मां जन्मीने बहु दु:ख देख्या, संसार शोक निवार॥†
कष्ट आपे मने कर्म ना बंधन, दूर तुं कर किर्तार॥‡
आ संसार वह्यो वह्यो जाय छे, लख चोराशी धार॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, आवागमन निवार॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 351

उलाहना

इस छोटे-से पद में मीरा बाई प्रभु को उलाहना देते हुए कहती हैं कि हे प्रभु, अपने प्रेम का प्रसाद प्रदान करने के बाद तू कहाँ चला गया है! मुझे प्रेम की नाव में बिठा लेने के बाद विरह के अथाह सागर में अकेला क्यों छोड़ गया है?

प्रभुजी थे कहाँ गया नेहड़ो लगाय॥§
छोड़ गया अब कोन बिसासी, प्रेम की बाती बलाय॥¶

---

* **मने**=मुझे; **नमी नमी**=झुक-झुक कर; **करूं छुं**=करती हूँ।

† **मां**=में; **जन्मीने**=जन्म लेकर।

‡ **आपे**=अपने आप; **मने कर्म ना**=मेरे कर्मों के कारण।

§ **थे**=आप; **नेहड़ो**=प्रेम।

¶ **बिसासी**=विश्वास को तोड़नेवाले; **बलाय**=जलाकर।

विरह समँद में छोड़ गया छो, नेह की नाव चलाय॥*
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन रह्योइ न जाय॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 164

निवेदन

मीरा बाई प्रभु से प्रार्थना करती हैं कि उन्हें संसार की यातनाओं से मुक्त किया जाये। परन्तु शरण की भावना के साथ वे कहती हैं कि प्रभु उन्हें भवसागर में बहते हुए तभी बचायें जब उनकी उद्धार करने की इच्छा हो:

तुम सुणौ दयाल म्हाँरी अरजी॥†
भवसागर में बही जात हूँ, काढो तो थाँरी मरजी॥‡
यो संसार सगो नहिं कोई, सांचा सगा रघुवरजी॥
मात पिता सुत कुटुँब कबीलो, सब मतलब के गरजी॥
मीराँ की प्रभु अरजी सुण लो, चरण लगावो थाँरी मरजी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 325

विरह-वेदना

विरह में व्याकुल मीरा बाई प्रभु से आकर दर्शन देने की प्रार्थना करती हैं। उन्हें बिना देखे वे दिन-रात बेचैन रहती हैं। इस व्याकुलता में न उन्हें भूख लगती है और न ही वह सो पाती हैं। अपनी व्यथा व्यक्त करने के लिए उनके पास शब्द नहीं हैं; परन्तु प्रभु तो अन्तरयामी हैं, अतएव वे याचना करती हैं कि उनके दु:ख को देखकर उनसे आकर मिलें:

प्यारे दर्शन दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय। (टेर)
जल बिन कमल चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्यां बिन सजनी।

---

* **छो**=हो।

† **म्हाँरी**= मेरी।

‡ **काढो**=निकालो; **थाँरी**=तुम्हारी।

आकुल ब्याकुल फिरूं रैन दिन, विरह कलेजा खाय॥
दिवस न भूख नींद नहिं रैनां, मुख से कथन न आवै बैनां।
कहा करूं कुछ कहत न आवै, मिल कर तपत बुझाय॥
क्यों तरसाओ अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीराँ दासी जनम जनम की, परी तुमारे पांय॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 133

हरि से मिलाप कैसे हो?

प्रभु से मिलने के लिए व्याकुल मीरा बाई शिकायत करती हैं कि हे प्रभु, तूने यह कैसी रचना रची है कि मुझे अपने धाम से बहुत दूर भेज दिया है और वापस जाने के सभी मार्ग बन्द हैं। तेरे देश का रास्ता ऊँचा-नीचा और रपटीला है और पद-पद पर गिरने की आशंका है। मार्ग में स्थान-स्थान पर कामना और तृष्णा रूपी सिपाही बैठे हैं जो मुझे रोकते हैं। क़दम-क़दम पर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार रूपी पाँच लुटेरे ताक लगाये बैठे हैं जो मेरे परमार्थ और भक्ति रूपी धन का हरण करना चाहते हैं।

पद के अन्त में मीरा बाई कहती हैं कि मेरे सतगुरु ने मेरा प्रभु से साक्षात्कार करवा दिया और युगों-युगों से बिछुड़ी हुई मीरा बाई को अपने धाम पहुँचा दिया:

गली तो चारों बंद हुई, मैं हरि से मिलूँ कैसे जाय॥*
ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
सोच-सोच पग धरूँ जतन से, बार-बार डिग जाय॥
ऊँचा नीचा महल पिया का, म्हाँ सूँ चढ़यो न जाय।†
पिया दूर पंथ म्हाँरो झीणो, सुरत झकोला खाय॥

---

* **गली तो चारों**=कुछ विद्वानों के अनुसार इन चार गलियों से मीरा का संकेत ज्ञान, योग, कर्म और वैराग्य के मार्गों से है।

† **म्हाँ सूँ**=मुझसे।

कोस-कोस पर पहरा बैठया, पैंड-पैंड बट मार।*
या विधना कैसी रच दीनी, दूर बसायो म्हाँरो गाँव॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु दई बताय।
जुगन-जुगन से बिछड़ी मीराँ, घर में लीनी लाय॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 171

ज्योति में ज्योति मिली

यह पद एक विरहिणी आत्मा की प्रभु से मिलाप की याचना है। पद के अन्त में मीरा बाई कहती हैं कि जब उन्हें अपने सतगुरु रविदास मिले और उन्होंने मार्ग बताया तो वे प्रभु से मिल गयीं। उनकी आत्मा रूपी ज्योति परमात्मा रूपी ज्योति में समाकर एक हो गयी:

तुम पलक उघाड़ो दीनानाथ, हूँ हाजिर नाजिर कबकी खड़ी। टेक।
साऊ थे दुसमण होइ लागे, सब ने लगूँ कड़ी।†
तुम बिन साऊ कोऊ नहीं है, डिगी नाव मेरी समँद अड़ी॥
दिन नहिं चैन रात नहिं निदरा, सूखूँ खड़ी खड़ी।
बान बिरह के लगे हिये में, भूलूँ न एक घड़ी॥
पत्थर की तो अहिल्या तारी, बन के बीच पड़ी।
कहा बोझ मीरा में कहिये, सौ ऊपर एक धड़ी॥‡
गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम भिड़ी।§
सतगुरु सैन दई जब आ के, जोत में जोत रली॥¶

मीराबाई की शब्दावली, पृ. 31

---

* **पैंड-पैंड**=क़दम-क़दम पर; **बट मार**=लुटेरे अथवा डाकू।

† **साऊ**=साथी अथवा मित्र; **कड़ी**=कटु, कड़वी।

‡ **धड़ी**=पाँच सेर का बाट।

§ **धुर से कलम भिड़ी**=परमात्मा ने अपनी कलम से मेरे माथे पर लिख दिया है।

¶ **सैन दई**=आन्तरिक मार्ग का संकेत दिया।

निद्रा-विहीन रातें

भक्त के वियोग की व्यथा का वर्णन करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि इस पीड़ा को केवल वही जान सकता है जो ख़ुद प्रभु के वियोग में दुःखी हो:

नींदड़ली नहिं आवै सारी रात, किस विधाँ होय परभात॥*
चमक उठी सपने सुध भूली, चंद्रकला न सोहात।†
तलफ तलफ जिव जाय हमारो, कब रे मिले दीनानाथ॥
भई हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात।
मीराँ कहै बीती सोई जानै, मरण जीवण उन हाथ॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 164

नाम का सुमिरन

प्रभु के नाम का निरन्तर सुमिरन करने की प्रेरणा देते हुए मीरा बाई कहती हैं कि नाम मन को निर्मल करता है, पापों का नाश करता है और जन्मों-जन्मों के कर्मों के लेखे को नष्ट करता है जो आत्मा को बार-बार इस संसार में आने पर बाध्य करते हैं। नाम रूपी अमृत सन्तों द्वारा मुफ़्त में दिया जा रहा है, उसे पीने में मनुष्य को आनाकानी नहीं करनी चाहिए:

मेरो मन राम हि राम रटै रे। (टेक)
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे॥
जनम जनम के खत जु पुराने, नाम हि लेत फटै रे॥
कनक कटोरे अमृत भरियो, पीवत कौन नटै रे॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै रे॥‡

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 218

---

* **विधां**=किस विधि अथवा उपाय से।

† **चंद्रकला**=चन्द्रमा का प्रकाश।

‡ **तन...रे**=तन और मन की अविनाशी प्रभु से ही पटती है अर्थात् तन मन उसी में रँग गया है।

पचरंग चोला

किसी छोटी लड़की को जब नये कपड़े पहनाये जाते हैं तो वह उन्हें दिखाने के लिए अपनी सहेलियों के पास दौड़ी जाती है, जो गाँव के झुरमुट अथवा झाड़ियों में खेल रही हैं। उनका प्रिय खेल लुका-छिपी होता है। वह भी उनके खेल में शामिल हो जाती है, परन्तु जब उसकी पकड़ने की बारी आती है, तब वह देखती है कि उसकी ओढ़नी उसके दौड़ने में बाधक है तो उसे उतार देती है और दौड़कर अपनी छिपी हुई सखी को ढूँढ़ लेती है।

आत्मा की आन्तरिक मण्डलों में यात्रा का संकेत मीरा बाई यहाँ छोटी लड़की के रूपक के द्वारा दे रही हैं। पाँच आन्तरिक धुनों के रंग में रँगे हुए वस्त्र धारण करके आत्मा आँखों के केन्द्र रूपी झुरमुट में खेलने जाती है। कर्मकाण्ड तथा बाहरमुखी उपासना के वस्त्र, जो अन्दर जाने के मार्ग में रुकावट हैं, वह उतार देती है और अपने गुरु को ढूँढ़ने में सफल हो जाती है। पद में मीरा बाई अपने आन्तरिक अनुभवों का वर्णन करते हुए कहती हैं कि पवन, पानी आदि पाँचों तत्त्व और सूर्य, चन्द्र और तारा-मण्डल पीछे रह जायेंगे तथा आत्मा और ऊँचे रूहानी मण्डलों में गमन करेगी। मीरा बाई यह भी स्पष्ट करती हैं कि परमात्मा का निवास मनुष्य-शरीर के अन्दर है और वह प्रेम के दीपक के प्रकाश के अन्दर ही प्रकट होता है:

सखी री मैं तो गिरधर के रँग राती॥ टेक॥
पचरँग मेरा चोला रँगा दे, मैं झुरमट खेलन जाती।
झुरमट में मेरा साईं मिलेगा, खोल अडम्बर गाती॥
चंदा जायगा सुरज जायगा, जायगा धरण अकासी।
पवन पाणी दोनों ही जायँगे, अटल रहे अबिनासी॥
सुरत निरत का दिवला सँजो ले, मनसा की कर बाती।*
प्रेम हटी का तेल बना ले, जगा करे दिन राती॥†

---

* **सुरत निरत**=आत्मा की (आन्तरिक मण्डलों में) सुनने की शक्ति को सुरत तथा देखने की शक्ति को निरत कहते हैं।

† **हटी**=दुकान।

जिन के पिय परदेस बसत हैं, लिखि लिखि भेजें पाती।
मेरे पिय मो माहिं बसत हैं, कहूँ न आती जाती॥
पीहर बसूँ न बसूँ सास घर, सतगुरु सब्द सँगाती।
ना घर मेरा ना घर तेरा, मीरा हरि रँग राती॥

मीराबाई की शब्दावली, पृ. 8-9

दिन थोड़ा रे

दीर्घकाल के अन्धकार के बाद मनुष्य-जन्म रूपी दिन का उदय हुआ है। यह जीव के लिए प्रभु को प्राप्त करने का अवसर है और उसे चाहिए कि इसका लाभ उठाये। उसे संसार की अन्य चिन्ताओं को छोड़कर दिन रहते-रहते प्रभु की नगरी में वापस पहुँच जाने की ही चिन्ता करनी चाहिए। पद के अन्त में मीरा बाई कहती हैं कि प्रभु की कृपा से उन्हें वह मार्ग मिला है जो सबसे नज़दीक है:

अब क्यों करे रे मूर्ख मोडो रे,
बटाऊ (पंथी) वाट घणी दिन थोड़ो रे॥*
उगोरे सूरज पूरब, घर पुगो तो, दोड सके तो दोडो रे॥†
करलो किमत हिमत मति हारो, कर चिंता पिछे दोडो रे॥‡
नगर पुछयां निरभे होसी, बीच रमण के फोडो रे॥§
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मार्ग म्हाने मिल्यो नेडो रे¶॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 762

---

* **मोडो**=मूर्ख; **वाट घणी**=मार्ग लम्बा है।

† **पुगो**=पहुँचो।

‡ **किमत**=मनुष्य-जन्म के इस अवसर की क़ीमत करो।

§ **पुछयां**=पहुँचने पर; **बीच...रे**=मार्ग के रमणीक दृश्यों में रम जाना कष्ट का कारण होगा।

¶ **नेड़ो रे**=नज़दीक का।

अलौकिक खिलौना

जब किसी बच्चे को कोई सुन्दर खिलौना मिल जाता है, तो उसका ख़याल खिलौने में ही लगा रहता है। इसी उदाहरण को लेते हुए मीरा बाई कहती हैं कि उन्हें राम-नाम रूपी अनुपम खिलौना मिल गया है। इसे उन्होंने अपने शरीर रूपी मन्दिर में पाया है और यह मधुर ध्वनि करता हुआ आया है। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, योगी आदि जप, तप, संयम और कठिन साधन कर-कर के थक गये परन्तु उन्हें यह विलक्षण खिलौना न मिल सका। यह केवल मन और माया की सीमा से परे सुन्न-मण्डल में ही मिल सकता है। नाम रूपी यह खिलौना, जिसे सब लोग 'अगम' और 'अगोचर' कहते हैं, मीरा बाई को अपनी भक्ति के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है और अब वे उसी में लीन रहती हैं:

राम रमकडुं जडियुं रे, राणा जी,
मने राम रमकडुं जडियुं॥
रुमझुम करतुं मारे मंदिरे पधार्युं,
नहिं कोइने हाथे घडियुं रे॥
मोटा मोटा मुनिजन मथी मथी थाक्या,
कोई एक विरला ने हाथे चडियुं रे॥
सुन शिखर ना रे घाटथी ऊपर,
अगम अगोचर नाम पडियुं रे॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
मारूँ मन शामलियाशुं जडियुं रे॥*

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 270

राम खिलौना मिलयो राणा जी,
मुझे राम खिलौना मिलयो रे॥
रुनझुन करता मेरे मंदिर आया,
न किसी ने हाथों घड़ियो रे॥

---

* यह मीरा बाई का एक गुजराती पद है, जिसका भावार्थ ऊपर दिया गया है।

ऋषिवर मुनिवर ढूँढ़त थाके,
विरले के हाथ वह लगयो रे॥
सुन मण्डल के परे मिले वह,
नाम अगम अगोचर पड़यो रे॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
मन श्यामसुन्दर से जुड़यो रे॥

(ऊपर दिये गुजराती पद का हिन्दी अनुवाद)

सन्तों हाथ बिकानी

मीरा बाई की ननद ऊदा बाई राणा के कहने से मीरा बाई को समझाती हैं कि वे सन्तों की संगति छोड़ दें। उत्तर में मीरा बाई कहती हैं कि सन्त ही उनके माता, पिता, सज्जन और सनेही हैं। उन्होंने सन्तों की शरण ले ली है और अपना तन, मन और धन उनके चरणों में न्योछावर कर दिया है :

मीरौं बात नहीं जग छानी,*
उदा बाई समझो सुघर सयानी॥
साधू मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ज्ञानी।
सन्त चरण की सरण रैन दिन, सत्य कहत हूँ बानी॥
राणा ने समझावो जावो, मैं तो बात न मानी।
मीरौं के प्रभु गिरधर नागर, संतां हाथ बिकानी॥

मीरौं सुधा-सिन्धु, पृ. 268

* **छानी**=छिपी हुई।

जोगी अजहूँ आयो नाहिं

मीरा बाई ने जोगी को सम्बोधित करते हुए कई पद लिखे हैं। इनमें से अधिकांश पद उस व्यक्ति के प्रति प्रेम और विरह को व्यक्त करते हैं जिसे मीरा बाई ने 'जोगी' कहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये पद प्रभु को सम्बोधित करते हुए कहे गये हैं, जिसे मीरा बाई ने अपने प्रेम में 'जोगी' कहकर पुकारा है।

किसी समय राजस्थान में प्राय: प्रत्येक साधु और महात्मा को जोगी कहकर पुकारा जाता था। आज भी राजस्थान के कुछ ग्रामीण भागों में सभी प्रकार के महात्माओं को लोग जोगी कहते हैं। यहाँ प्रस्तुत तीनों पदों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि मीरा बाई किसी ऐसे व्यक्ति के दर्शन के लिए व्याकुल हैं जिसे वे देह-स्वरूप में मिल चुकी हैं। पहले पद में मीरा बाई यह सन्देह प्रकट करती हैं कि या तो जोगी उन्हें भुला चुका है या वह इस संसार में अब जीवित नहीं है। दूसरे पद में वे कहती हैं कि जोगी जैसा सुन्दर मुख उन्होंने इस संसार में दोबारा कहीं नहीं देखा है। तीसरे पद में मीरा बाई बताती हैं कि वे जोगी की तलाश में जगह-जगह भटकती फिरीं पर उसके दर्शन नहीं हुए; इसी तरह खोजते-खोजते वे वृद्धावस्था को प्राप्त हो गयीं हैं और उनके काले केश श्वेत हो गये हैं।

इस निष्कर्ष पर पहुँचना शायद ग़लत न होगा कि मीरा बाई का यह गहरा प्रेम और विरह उनके गुरु रविदास के प्रति है, जिसे उन्होंने जोगी कहकर पुकारा है। सन्तमत में सतगुरु के प्रति अपार भक्ति और प्रेम प्रभु-प्राप्ति की ओर ले जानेवाली सीढ़ी है:

जोगिया जी निसदिन जोऊं बाट।
पांव न चाले पंथ दुहेलो, आड़ा औघट घाट। (टेर)
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।
मैं भोली भोलापण कीन्हो, राख्यौ नहीं बिलमाइ॥*
जोगिया कूँ जोवत दिन बीत्या, अजहूँ आयो नांहि।†
विरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन मांहिं॥
कै तो जोगी जग में नाहीं, कै 'र बिसारी मोइ।
काँई करूँ कित जाऊँ री सजनी, नैण गुमाया रोइ॥
आरति तेरी अंतरि मेरे, आवो अपणी जाण।
मीराँ ब्याकुल विरहिणी रे, तुम बिन तलफत प्राण॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 80

जोगिया सौं प्रीत कियाँ दुख होय। (टेर)
प्रीत कियाँ सुख नहिं मोरी सजनी, जोगी मींत न कोई।
रात दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियां बिन मोई॥
ऐसी सूरत या जग माहीं, फेरि न देखी सोई।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आनँद होई॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 84

जोगी म्हाँने दरस दियाँ सुख होइ॥
नातरि दुखी जग माहिं जीवड़ो, निस दिन झूरै तोई॥‡
दरस दिवानी भई बावरी, डोली सब ही देस॥
मीराँ दासी भई है पंडर, पलटया काला केस॥§

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 928

---

* **बिलमाइ**=प्रेम में बाँधकर रोकना।
† **जोवत**=बाट जोहते हुए; **बोहो**=बहुत।
‡ **नातरि**=नहीं तो अर्थात् दर्शन न पाने पर।
§ **पंडर**=पीली अर्थात् वृद्धावस्था के कारण क्षीण।

दृढ़ निश्चय

प्रस्तुत पद में मीरा बाई सन्तों की संगति में रहने का दृढ़ निश्चय प्रकट करती हैं। धन, यश और सांसारिक सुखों को वे तिलांजलि देने के लिए तैयार हैं; दिव्य प्रेम को प्राप्त करने के लिए वे अपना शीश तक भेंट करने से न हटेंगी। उनका मन सुमिरन में लगा हुआ है और वे अपने अविनाशी प्रभु से यही याचना करती हैं कि उन्हें सतगुरु की शरण प्राप्त हो:

बरजी मैं काहू की नाँहिं रहूँ॥*
सुणो री सखी तुम चेतन होय कै, मन की बात कहूँ॥
साध-सँगति कर हरि-सुख लेऊँ, जग सूँ दूर रहूँ।
तन धन मेरो सबही जावो, मेरो सीस लहूँ॥
मन मेरो लागो सुमरण सेती, सबका मैं बोल सहूँ।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, सतगुरु सरण गहूँ॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 391

मैं प्रभु पाया जी

मीरा बाई ने प्रभु-मिलाप के आनन्द को व्यक्त करते हुए कई पद रचे हैं। यद्यपि उनके विरह के गीत अधिक लोकप्रिय हैं, फिर भी मिलन के गीत भावों की गहराई और माधुर्य में कुछ कम नहीं हैं। इस पद में मीरा बाई अपने प्रियतम के घर आने की प्रसन्नता का वर्णन करते हुए कहती हैं कि प्रभु को अपने घर में पाकर उनकी विरहाग्नि शान्त हो गयी तथा वियोग का दु:ख और द्वैत समाप्त हो गया:

म्हारा ओलगिया घर आया जी। (टेक)†
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिल-मिल मंगल गाया जी॥

---

* **बरजी**=रोकने पर अथवा मना करने पर।

† **ओलगिया**=वह प्रिय-जन जो विदेश चला गया हो और जिसके आने की आस हो।

घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणद आया जी॥
मगन भई मिलि प्रभु अपणा सूं, भौ का दरद मिटाया जी॥
चंद कूँ देखि कमोदणि फूलै, हरखि भया मेरी कायाजी॥
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी॥
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया जी॥
मीराँ बिरहणि सीतल होई, दुख दुन्द दूरि न्हसाया जी॥*

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 190

सूरमा

मीरा बाई भक्त को प्रेरणा देती हैं कि अपनी भक्ति और आत्मिक अभ्यास में दृढ़तापूर्वक लगा रहे। जिस प्रकार एक वीर योद्धा भाला, तलवार, ढाल आदि से सुसज्जित होकर युद्ध-भूमि में विजय-प्राप्ति के निश्चय के साथ उतरता है, उसी प्रकार भक्त को दृढ़ता, साहस और लगन के साथ अपने अभ्यास में जुट जाना चाहिए। उसकी भक्ति उसका सतगुरु, उसकी ढाल सतगुरु की रक्षा का हाथ और उसकी तलवार उनकी कृपा है। विश्वास और दृढ़ता के साथ उसे भजन रूपी संग्राम में प्रवृत्त होकर अपने ध्येय अर्थात् प्रभु को प्राप्त करना चाहिए:

लग रहना, लग रहना, हरि भजन
में लग रहना, लग रहना॥
साहेब का घर दूर है रे, जैसी लगी खजूर।
चढ़े सो चाखे प्रेम रस, पड़े तो चकनाचूर॥
क्या बख्तर का पहरना रे, क्या ढालों की ओथ।†
सूरा पूरे का पारखा रे, लड़े धणी के जोर॥‡

---

* **दुख दुन्द**=सुख-दुःख, राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्व; द्वैतभाव।

† **ओथ**=ओट।

‡ सच्चे सूरमा रूपी भक्त की यही परख है कि वह अपने स्वामी की शक्ति का आसरा लेकर अभ्यास करता है।

ज्ञान कटारी बड़ी रे, गुरू गोविन्द तलवार।
वैराग्य रूपी भाला बांध ले, कबहुँ न होंवे हार॥
हाड चाम की देह बनी रे, नव नाड़ी दश कोर।*
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, लगी राम सों डोर॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 750

प्रभु तू रुष्ट क्यों है?

दर्शन के लिए व्याकुल मीरा बाई मन में आशंकित हैं कि शायद प्रभु उनसे रुष्ट है। वे पूछती हैं कि हे प्रभु, मेरे असंख्य अवगुणों में से वह कौन-सा अवगुण है, वह कौन-सा गुनाह है जिसके लिए तू मुझसे नाराज़ होकर दर्शन देने में विलम्ब कर रहा है। हे करुणामय, मुझसे अप्रसन्न होकर तुझे भी अवश्य दुःख हो रहा होगा। तू तो दुःखी न हो, मुझे दर्शन दे, मुझे तो तेरे ही नाम की रट लगी है:

गिरधर रूसणूं जी कोंण गुन्हां। (टेर)
कछु इक ओगुण काढो म्हांमै, म्हे भी कानां सुणां॥
मैं तो दासी थांरी जनम जनम की, थे साहिब सुगणां॥†
कांई बातसूं करयो रूसणूं, क्यों दुख पावो छो मनां॥
किरपा करि मोहि दरसण दीज्यो, बीते दिवस घणां॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, थारो ही नांव भणां॥‡

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 60

* **दश कोर**=दस इन्द्रियाँ।
† **सुगणां**=गुण-सम्पन्न।
‡ **भणां**=पुकारती हूँ।

विरह-वेदना

यह पद अपने प्रियतम प्रभु के वियोग में मीरा बाई की विरह-वेदना को प्रकट करता है। वह अपने दु:ख में शिकायत करती हैं कि प्रियतम न तो स्वयं आते हैं, न आने का कोई सन्देश भेजते हैं, उन्हें तो उनको तरसाने की आदत ही पड़ गयी है:

कोई कहियौ रे प्रभु आवन की, आवन की मन भावन की। (टेर)
आप न आवै लिख नहिं भेजै, बाँण पड़ी ललचावन की॥*
ए दोई नैण कह्यो नहिं मानैं, नदियाँ बहै जैसे सांवन की॥
कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो, पाँख नहीं उड़ जांवन की॥
मीराँ कहै प्रभु कब रै मिलोगे, चेरी भई हूँ तेरे दांवण की॥†

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 53

घट का दर्पण

यह मीरा बाई के आत्म-कथात्मक पदों में से एक है, जिससे प्रकट होता है कि वे किस प्रकार राणा द्वारा प्रस्तुत की गयी बाधाओं तथा लोक-निन्दा की परवाह न करते हुए भक्ति-मार्ग पर दृढ़ रहीं। वे कहती हैं कि सतगुरु ने उन्हें अपने शरीर के अन्दर का दर्पण दिखा दिया है अर्थात् आन्तरिक आत्मिक मण्डलों के दृश्य प्रकट कर दिये हैं। उनका सुहाग अर्थात् पति रूपी परमेश्वर प्रकट हो गया है। मीरा बाई कहती हैं कि घट के अन्दर के इस भेद को हर कोई नहीं जानता:

राणाजी हूं अब न रहूँगी तोरी हटकी॥‡
साध संग मोहि प्यारा लागै, लाज गई घूंघट की॥

---

* **बाँण**=आदत; **ललचावन**=तरसाने।

† **दांवण**=युक्ति, ढंग, कुछ विद्वानों ने 'दाँवण' का अर्थ दामन भी किया है।

‡ **हटकी**=रोकी हुई।

पीहर मेड़ता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोउ चटकी।*
सतगुरु मुकर दिखाया घट का, नाचूंगी दे दे चुटकी॥†
हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूड़ी करकी पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घटकी॥
महल किला राणा मोहिं न चाये,सारी रेसम पटकी।
हुई दिवानी मीराँ डोलै, केस लटा सब छिटकी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 280

प्रेम का उलाहना

प्रभु पर निष्ठुरता का आरोप लगाते हुए मीरा बाई कहती हैं कि उन्होंने अपने निर्मोही प्रभु की प्रीति को देख लिया है। उनके हृदय में प्रेम की लौ जगाकर अब उन्होंने उलटी रीति अपनाकर उन्हें वियोग की व्यथा दे दी है। यह प्रेम का कौन-सा ढंग है कि पहले मिलन रूपी अमृत देकर अब विछोह के विष का प्याला पिला रहे हैं! पद के अन्त में वे कहती हैं कि हे प्रभु, आप तो सबके स्वामी हैं, आप भी साधारण संसारियों की तरह 'गरज के मीत' क्यों बन गये? उलाहने के कटु शब्दों के पीछे उनके प्रेम की गीतिमय कोमलता इस पूरे पद में व्याप्त है:

जाओ हरि निरमोहिआ, जाणी थाँरी प्रीत॥
लगन लगी जद प्रीत और ही, अब कुछ अँवली रीत॥‡
इमरत पाइ के विष क्यूँ दीजै, कूँण गाँव की रीत॥§
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अपणी गरज के मीत॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 178

* **चटकी**=खिल गयी अर्थात् जाग्रत हो गयी।

† **मुकर**=दर्पण।

‡ **अँवली**=उलटी।

§ **इमरत**=अमृत; **कूँण**=कौन-से, किस।

जो मैं साहिब पाऊँ

इस छोटे-से पद में मीरा बाई कहती हैं कि एक बार यदि प्रभु सामने आ जायें तो अपने नयनों से वे उन्हें निरन्तर निहारती रहेंगी। आन्तरिक आत्मिक मण्डलों की यात्रा का संकेत करते हुए वे कहती हैं कि त्रिकुटी के शिखर से वे प्रभु की ओर टकटकी लगायेंगी तथा और ऊपर जाकर तीसरे स्थान अर्थात् सुन्न मण्डल में अपनी सुरत अथवा आत्मा को स्थिर करेंगी:

नैनन बनज बसाऊं री, जो मैं साहिब पाऊँ री। (टेर)*
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाँऊँ री॥†
त्रिकुटी महल में बना है झरोका, तहां से झाँकी लगाऊँ री॥
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ री॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 127

और देव न जानूँ

विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना, गंगा, जमुना आदि नदियों में स्नान और प्रयाग, काशी आदि तीर्थों की यात्रा का खण्डन करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि वे केवल प्रभु को ही जानती हैं तथा उनके अन्तर में केवल उन्हीं के दर्शन की प्यास है:

बन जाऊँ चरन की दासी रे। दासी मैं भई उदासी॥
और देव कोई न जाणूं। हरि बिन भई उदासी॥
नहीं न्हावुं गंगा नहीं न्हावुं जमुना। नहीं न्हावुं प्रयाग कासी॥
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर। चरन कमल की प्यासी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 815

---

* **बनज**=व्यापार।
† **नाँऊँ**=झुकाऊँ।

तेरी शरण पड़ी

मीरा बाई कहती हैं कि अनेक बाहरमुखी क्रियाओं को करके और सभी तीर्थों की यात्रा करके भी मन वश में नहीं आया। हे प्रभु, मैं अब तेरी शरण में आयी हूँ, जैसे बने मुझे तार ले। इस जग में मेरा कोई नहीं है, मुझे केवल तेरा ही आसरा है:

मैं तो तेरी सरण परी रे रामाँ, ज्यूँ जाणे ज्यूँ तार। (टेर)
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नाहीं मानी हार॥
या जग में कोई नहीं अपणां, सुनियौ श्रवन मुरार॥
मीराँ दासी राम भरोसे, जम का फंद निवार॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 224

लागी लगन

मीरा बाई गुरु के प्रति अपने प्रेम और उनके दर्शन की कामना को व्यक्त करते हुए कहती हैं कि उन्हें गुरु-चरणों के सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं लगता। गुरु की कृपा से संसार की माया उन्हें स्वप्न के समान अर्थहीन लगती है और संसार रूपी भयानक सागर उनके लिए सूख गया है। अब उन्हें तरने की कोई चिन्ता नहीं है। उन्हें केवल गुरु-दर्शन की आस है और वे प्रभु से याचना करती हैं कि उन्हें गुरु की शरण प्राप्त हो:

मोहे लागी लगन गुरु-चरनन की। (टेक)
चरन बिना कछुवै नहिं भावै, जग-माया सब सपनन की॥*
भवसागर सब सूखि गयौ है, फिकर नहीं मोहि तरनन की॥
मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, आस वही गुरु-सरनन की॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 235

---

* **कछुवै**=कुछ भी।

जो घन के घाव सहे

प्रभु के प्रेमियों को सदा ही दुनियादारों द्वारा निन्दा और निरादर सहना पड़ता रहा है। मीरा बाई के अपने जीवन की भी यही गाथा रही है। इस गुजराती पद में वे सन्तों की गम्भीरता और सहिष्णुता का संकेत करते हुए कहती हैं कि सन्त अथवा सच्चे भक्त असली हीरे के समान घन की चोट सहकर भी अपनी स्थिरता और आत्मिक उज्ज्वलता नहीं खोते। पद का भावार्थ इस प्रकार है: कोई कितने ही निन्दा या ताने के शब्द कहे उसे कहने दो, हमें प्रभु की भक्ति से डिगना नहीं चाहिए। संसारी और भक्त दोनों अलग-अलग होते हुए भी संसार में साथ ही रहते हैं। इनमें से सच्चा भक्त अथवा सन्त हम किसे कहेंगे? सच्चा भक्त उसी को समझो जो सबके तानों और कटु-वचनों को शान्तिपूर्वक सहे। हीरे और कंकर यदि ऊपर से एक ही रूप और रंग के दिखायी दें तो हम असली हीरे को कैसे पहचानेंगे? असली हीरा उसे ही जानो जो घन की अनेक चोटें खाने पर भी अपना रूप और ज्योति नहीं खोता। मीरा बाई कहती हैं कि प्रभु के चरण-कमलों को अपने हृदय में बसाये रखो:

कोई कहे तेने कहेवा रे दईसे, आपणे हरि भजन मां रहीसे रे॥
उगत भगत बे जुदा बसे छे, तेमां भक्तपणुं कोने कहीसे रे।
भक्तपणुं तब जाणीए आपण, सौनां मेणां सहीसे रे॥
हीरा ने कंकर एकज रंगा, तेमां हीरापण कोनी कहीसे रे।
हीरापणुं तब जाणीए आपण, घाव घणेरा सहीसे रे॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर चित दईसे रे॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 403

प्रेम में पागल

भक्तों और प्रेमियों को सांसारिक लोग पागल समझते हैं। प्रेमी प्रभु की याद में निरन्तर लीन रहते हैं, उनकी आन्तरिक अवस्था को साधारण लोग नहीं समझ सकते। ऐसे प्रेमियों की देख-भाल प्रभु स्वयं करता है और उनके सभी कार्य सँवारता है। मीरा बाई कहती हैं कि ऐसी प्रीति उत्पन्न करना ही मनुष्य-जन्म का उद्देश्य है और यदि यह पूर्ण हो जाये तो और कुछ करना बाक़ी नहीं रहता।

पद का भावार्थ: ''पागल? हाँ, मैं पागल हूँ, परन्तु इस पागलपन में ही मुझे प्रभु का प्रेम रूपी लाभ प्राप्त हुआ है। पिछले असंख्य युगों से मैं सत्य को न जान सकी और मेरा मन माया के बन्धनों में फँसा रहा। मैं भवसागर में पड़ी भटक रही थी कि प्रभु स्वयं ही मेरे मार्ग में आकर मुझसे मिले। यदि मैं पागल हूँ तो हरि के प्रेम में ही पागल हूँ, मेरी इस अवस्था को दुनियादार क्या जान सकते हैं! जो आनन्द देवी-देवताओं को भी दुर्लभ है, उस आनन्द का अनुभव यह पागल नित्य करती है। मुझे तो मेरे प्रभु ने ही अपने प्रेम में पागल किया है; मेरे स्वामी ने ही मुझे इस पागलपन के द्वारा निर्मल कर दिया है। मेरे पिछले जन्मों के संस्कार और प्रेम के कारण ही प्रभु ने मुझे अपना हाथ बढ़ाकर अपनाया है। हे सांसारिक लोगो, तुम मुझे पागल-पागल क्या कहते हो, इस पागल के तो सभी कार्य प्रभु ही सम्पूर्ण करते हैं। जिन्हें संसार के सुख, दुःखों के समान प्रतीत होते हैं ऐसे लोग मर कैसे सकते हैं? अर्थात् वे तो जीते-जी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। इस पागल को तो सन्तों के चरणों की सेवा के सिवाय और कुछ नहीं आता।'' मीरा बाई कहती हैं कि अपने पागलपन में उन्होंने प्रभु को प्राप्त कर लिया है, उनके सभी कार्य सम्पूर्ण हो गये हैं और उन्हें अपने ध्येय की प्राप्ति हो गयी है:

घेलां, अमे घेलां रे, अमने घेलां मां गुण लाध्यो॥
आगे तो अमे कांइ न जाण्युं, मन माया मां बांध्युं।
भवसागर मां भुला पडीयां, मारग मलीया माधुँ॥
घेलां तो अमे हरीनां घेलां, दुरजनीया शुं जाणे।
जे रस देवी देव ने दुर्लभ, ते रस घेलां माणे॥
घेलां तो अमने हरीए कीधां, निरमल कीधां नाथे।
पुरब जनम नी प्रीतलडी अमने, हरीए झाल्यां हाथे॥
घेलां घेलां तमे शुं करो, घेलांनुं काम हरि करशे।
सुखनुं केतां दुःखज लागे, ते नर क्यांथी मरशे॥
घेलां तो अमे कांइ न जाणतां, साधु चरणों सेव्यां।
मीराँ कहे प्रभु गीरधरना, गुण समजे कारज सीध्यां॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 483

पगली हूँ हाँ पगली रे, पगली थी तो लाभ हुआ॥
पहले तो मैं कुछ न जाना, मन माया ने बांध्यो।
भवसागर में भटक रही थी, पथ में आ मिले माधो॥
पगली तो हरि प्रेम की पगली, दुनियादार क्या जाने।
जो देवी-देवों को दुर्लभ, सो रस पगली जाने॥
पगली बनाया जिसने मुझको, मल धोया उस नाथ ने।
जनम जनम की प्रीत हरि से, हरि पकड़या हाथ रे॥
पगली पगली क्या करते तुम, पगली का काम हरि करते।
सुख कहें जिस को दुख वह मुझको, ऐसे पागल कहाँ मरते॥
पगली हूँ मैं और क्या जानूँ, सेवा करूँ संत चरनन।
मीरा गावे गिरधर के गुण, सभी काज हुए पूरण॥

(ऊपर दिये गुजराती पद का हिन्दी अनुवाद)

प्रेम का अंकुर

जब भक्त प्रभु-प्रेम के मार्ग पर पहला क़दम रखता है तो लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु जब समय पाकर भक्ति का बीज अंकुरित होकर एक विशाल वृक्ष का रूप ले लेता है और भक्त के तन, मन और प्राण अपने प्रियतम के चिन्तन में लीन हो जाते हैं तथा भक्ति की मानी हुई परिपाटियाँ अर्थात् पूजा-पाठ, जप-तप आदि भक्त के लिए निरर्थक हो जाती हैं, तब वे ही सांसारिक लोग उसकी आलोचना और निन्दा करने लगते हैं। अपने जीवन में मीरा बाई को भी इस कठिनाई का सामना करना पड़ा था। इस पद में वे कहती हैं कि अब वे प्रेम के मार्ग से यदि चाहें तो भी नहीं हट सकतीं क्योंकि उन्हें किनारे की झलक दिखायी दे रही है। उन्होंने भक्ति रूपी अमृत की बूँद को पी लिया है तथा वे उसके अन्तर में समा गयी है:

गोविन्द सूँ प्रीत करत, तबहि क्यों न हटकी।
अब तो बात फैल परी, जैसे बीज बट की॥*
बीच की बिचार नाहि, छाँय परी तट की।†
अब चूको तो ठौर नाहिं, जैसे कला नटकी॥‡
जल की घुरी गाँठ परी, रसना गुन रट की।§
अब तो छुड़ाय हारी, बहुत बार झटकी॥
घर घर में घोल मठोल, बानी घट घट की।¶
सबही कर सीस धारे, लोक लाज पटकी॥**

---

* वट वृक्ष के समान प्रेम अंकुरित होकर वृक्ष हो गया है।

† अब बीच में छोड़ने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि किनारा नज़र आने लगा है।

‡ जैसे नट रस्सी पर कला दिखाते समय अगर ध्यान विचलित करता है तो नीचे गिरता है।

§ मेरी रसना को इस प्रकार प्रभु के गुण (नाम) रटने की आदत पड़ गयी है, जैसे जल में भीगी हुई गाँठ खुल नहीं सकती, इसी प्रकार नाम के सुमिरन की आदत छूट नहीं सकती।

¶ **घोल मठोल**=निन्दा और ताने; **बानी...की**=प्रत्येक मुख से अलग-अलग चर्चा सुनायी देती है।

** जिस लोक-लाज को सब सिर पर धारण करते हैं उसे मैंने एक ओर पटक दिया है।

मद की हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी।
दास मीराँ भक्ति बुँद हिरदय बीच गटकी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 377

हंसा चुगत जुवार

आत्मा, जो किसी समय अपने निज-धाम में आनन्द का अनुभव कर रही थी, इस संसार में आकर मैली हो गयी है। इस भाव को मीरा बाई एक हंस के दृष्टान्त द्वारा समझाती हैं जो मानसरोवर के निर्मल जल को छोड़कर इस संसार के कीचड़ भरे तालाब में आकर बस गया है:

माधो बिना बसती उजार, मेरे भाँवे। (टेक)*
एक समै मोतियन के धोके, हंसा चुगत जुवार॥
सरवर छाँड तलैया बैठे, पंख लपट रही गार॥
सरवर सूके तरवर कुम्हलाये, हंसा चले उडार॥
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, लाँबी भुजा पसार॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 185

संसार की असारता

संसार की असारता बताते हुए मीरा बाई भक्ति और प्रेम के मार्ग को अपनाने की प्रेरणा देती हैं। तीर्थ, व्रत, स्नान, योग, वैराग्य आदि अर्थहीन हैं। उनको करने पर भी जीव को फिर से संसार में आना पड़ेगा। मनुष्य को अपने अनमोल जन्म को इस प्रकार की बाहरमुखी क्रियाओं में नष्ट नहीं करना चाहिए:

भज मन चरन कँवल अबिनासी। (टेर)
जेताइ दीसे धरनि गगन बिच, तेताइ सब उठि जासी।

---

* **मेरे भाँवे**=मेरे लिए।

कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्यां उठि जासी॥*
कहा भयो है भगवा पहरयां, घर तज भये सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जानी, उलटि जनम फिर आसी॥
अरज करौं अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, काटो जम की फांसी॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 160

गुरु-चरणों की महिमा

इस गुजराती पद में मीरा बाई जप, तप, तीर्थ आदि की तुलना में गुरु-भक्ति को अधिक महत्त्व देती हैं। वे कहती हैं कि यह भेद अथवा ज्ञान उन्हें अपने गुरु से ही प्राप्त हुआ है। पद का भावार्थ इस प्रकार है: ''मेरे गुरुदेव ने मेरे कानों में यह बात कही अर्थात् मुझे यह भेद प्रदान किया कि जप, तप, तीर्थ आदि शुभ-कर्मों का फल गुरु के चरणों में पहुँचने से अपने आप ही प्राप्त हो जाता है। चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का सुख भी गुरु के चरणों में ही है। हे प्रियतम, मेरे प्रेम को स्वीकार करके मेरे हृदय रूपी मन्दिर में आओ। मेरी जाति, वर्ण, गुण, दोष आदि की ओर न देखो। मीरा बाई कहती हैं कि हे प्रभु, मैं आपके गुणों का ही ध्यान करती हूँ और आपसे यही प्रार्थना करती हूँ कि मृत्यु के कठिन समय में मेरी सुधि लें और सँभाल करें'':

गुरुये कहियुं करण मां हो शामलियाजी॥
जप तप तीरथ चार पदारथ ये मारा,
गुरूजीना चरण मां हो शामलियाजी॥

---

* **चहर...जासी**=चिड़ियों का खेल जो कि दिन अस्त होते ही समाप्त हो जाता है।

प्रेमे करिने मारे मंदिरे पधारो वहाला,
न जोशो जात वरण मां हो शामलियाजी॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण वहाला,
आड़े आवजो मारा मरण माँ हो शामलियाजी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 335

लगन नहीं छूटे

प्रभु के प्रति अपने गहरे प्रेम को प्रकट करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि मेरी तुझसे लगी हुई प्रीति अब टूट नहीं सकती। जैसे घन की चोट खाकर हीरा टूटता नहीं बल्कि और निखर उठता है, वैसे ही संसार के ताने और तेरे वियोग की व्यथा की चोटें सहकर भी मेरा प्रेम स्थिर है। तू मेरे मन में इस प्रकार बसा हुआ है जिस प्रकार कमल की नाल निरन्तर जल में रहती है। पद के अन्त में मीरा बाई कहती हैं कि हे स्वामी, मैं आपके प्रेम में डूबी हुई हूँ, आप ही मेरी प्रीति को निभाना:

हमरे रौरे लागलि कैसे छूटै॥*
जैसे हीरा हनत निहाई, तैसे हम रौरे बनि आई॥†
जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हम रौरे दिल लागा॥
जैसे कमल नाल बिच पानी, तैसे हम रौरे मन मानी॥
जैसे चंदहि मिलत चकोरा, तैसे हम रौरे दिल जोरा॥
जैसे मीराँ पति गिरधारी, तैसे मिलि रहु कुंजबिहारी॥‡

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 398

---

* **हमरे**=हमारी; **रौरे**=आपसे; **लागलि**=लगी हुई लगन।

† **हनत**=चोट करता है; **निहाई**=घन (लोहार का हथौड़ा)।

‡ मीरा बाई का यह शब्द अवधी बोली में है।

फेर न मैला होय

मीरा बाई हरि के जन अर्थात् गुरु की तुलना धोबी से करते हुए कहती हैं कि गुरु शिष्य के मन को धो दे तो वह दुबारा कभी मैला नहीं हो सकता। वह सुमिरन के साबुन तथा प्रीति के जल से मन को धोकर उसे शील आदि उत्तम गुणों से सजा देता है। इस तन रूपी पिंजरे में मन रूपी तोते को चाहिए कि वह प्रभु का नाम लेता रहे:

धोयँ न मैला होय, हरिजन धोबिया मन धोय॥*
मोह का फंदा काट मूरख, ताटी तन की तोड़।†
पांच पचीसाँ ने गारद करले, मंदर दिवला जोय॥‡
सूरत साबू प्रीत जल से, कमियाँ शील संजोय।§
ऐसी धोवट धोय धोबिया, फेर न मैला होय॥
तन का पींजरा मन का सूआ, हिरदा में हरि गुण बोल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जीवणा दिन दोय॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 750

शरण

सच्ची भक्ति और प्रेम अपने आपको प्रियतम पर न्योछावर कर देना और उनकी प्रत्येक इच्छा में प्रसन्न रहना है। इस भावना को व्यक्त करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि मैं तो अपने प्रियतम को हर तरह से रिझाने की कोशिश करूँगी। जो वे पहनायेंगे उसी को पहनकर मैं सुख मानूँगी, जो वे देंगे वही खाऊँगी, जैसे और जहाँ वे रखेंगे उसी में सन्तुष्ट रहूँगी। मैंने अपने आपको

---

* **धोयँ...होय**=एक बार धोने पर फिर मैला नहीं होता।

† **ताटी...तोड़**=आत्मा पर से तन रूपी आवरण को हटा।

‡ **गारद**=गारद अर्थात् नष्ट कर दे; **मंदर**=सभी सन्तों ने मनुष्य-शरीर को हरि का मन्दिर कहा है।

§ **कमियाँ...संजोय**=दोषों के स्थान पर शील आदि गुणों को अपना ले।

उनकी इच्छा पर छोड़ दिया है, यदि वे मुझे बेचना भी चाहें तो मैं ख़ुशी से बिक जाऊँगी:

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके संग खेलूँ ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावे तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 379

जन्म-मरण के साथी

अपनी विरह-वेदना को व्यक्त करते हुए मीरा बाई प्रभु से मिलाप के लिए प्रार्थना करती हैं। वे दिन-रात उनके आने की बाट जोहती हैं और उनके दर्शन के लिए व्याकुल आँखें रो-रो कर लाल हो गयी हैं। प्रभु-मिलाप के मार्ग में मन बहुत बड़ी बाधा है। वे अपने सतगुरु से प्रार्थना करते हुए कहती हैं कि मेरा मन बड़ा दुष्ट है, वह मदमस्त हाथी के समान उद्दण्ड है। हे सतगुरु, आप अपना हाथ अंकुश के समान मेरे सिर पर रखें ताकि मेरा मन वश में आ जाये:

म्हारे जन्म-मरण रा साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती॥
थाँ देख्याँ बिन कल न पड़त है, जाणत मेरी छाती।
ऊँची चढ़-चढ़ पंथ निहारूँ, रोय-रोय अँखियाँ राती॥*

---

* **राती**=लाल हो गयी हैं।

यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती।*
दोउ कर जोड़याँ अरज करूँ छूं सुण लीज्यो मेरी बाती॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुरू हाथ धरौ सिर ऊपर, आँकुस दै समझाती॥
पल-पल पिव को रूप निहारूं, निरख-निरख सुखपाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती॥†

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 167

लीनो गोविन्द मोल

अपने परिवार के लोगों की आलोचना का उत्तर देते हुए मीरा बाई कहती हैं कि उन्होंने उस अनमोल प्रभु को मोल ले लिया है अर्थात् प्रभु को पूर्णतया अपना लिया है और प्रेम के वश हो प्रभु उनके हो गये हैं। चाहे लोग कहें कि उन्होंने यह अच्छा व्यापार नहीं किया अर्थात् प्रेम के मार्ग को अपनाकर उचित नहीं किया, पर मीरा बाई डंके की चोट पर कहती हैं कि उन्होंने एक बहुमूल्य सौदा किया है:

माई री मैं तो लीनो गोविंदो मोल। (टेर)
कोई कहै छाने कोई कहै छुपकै, लियो री बजंता ढोल॥
कोई कहै महँगो कोई कहै सोंघो, लियो री तराजू तोल॥
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलिक मोल॥
याही कूँ सब लोग जाणत है, लियो री आँखी खोल॥
मीरा कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम का कोल॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 183

---

* **न्याती**=परिवार और स्वजन।

† **हरि...राती**=ध्यान हरि के चरणों में रहता है।

बेगि मिलो आई

अपने रूप और गुणों की रस्सी से कमल-नयन प्रभु ने मीरा बाई के हृदय को बाँध लिया है। प्रेम के तीर से उनके हृदय को बेधकर प्रभु अब उन्हें वियोग की असह्य व्यथा सहने के लिए छोड़ गये हैं। वे जानती हैं कि उनके प्रियतम उनके पास ही हैं, दूर नहीं, क्योंकि प्रभु मनुष्य-शरीर के अन्दर निवास करता है। परन्तु अन्तर में प्रवेश करके उनको देख न पाने के कारण वे उनसे प्रार्थना करती हैं कि जल्दी आकर उनसे मिलें:

मन हमारा बाँध्यो माई, कँवल नैन अपने गुन। (टेक)
तीखण तीर बेध शरीर दूरि गयो माई।
लाग्यो तब जान्यों नहीं, अब न सह्यो जाई री माई॥
तंत मंत औषद करउ, तऊ पीर न जाई।*
है कोऊ उपकार करे? कठिन दर्द री माई॥
निकटि हो तुम दूरि नहीं, बेगि मिलो आई।
मीराँ गिरधर स्वामी दयाल, तन की तपति बुझाई री माई।†
(कँवल नैन आपने गुन बाँध्यो माई।)॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 174

अविनाशी वर

अनादि काल के इस भयंकर संसार-सागर में दुःख पाते रहने के बाद सतगुरु का मिलाप प्राप्त करके मीरा बाई तर गयी हैं। अपने आत्मिक आनन्द में मग्न हो वे कहती हैं कि मैंने ऐसा वर प्राप्त कर लिया है जो अखण्ड और अविनाशी है। पद का भावार्थ इस प्रकार है: "हे सखी, मैंने तो ऐसा वर प्राप्त कर लिया है जो अमर और अविनाशी है। परिवार और सम्बन्धी सब स्वार्थ

---

* **तंत मंत**=तन्त्र-मन्त्र।

† मीरा बाई का यह पद 'भाई बन्नो दी बीड़' में भी मिलता है।

के साथी हैं, मैंने इनके जाल से छुटकारा पा लिया है। इस संसार में जन्म पाकर मैंने बहुत दुःख पाये और घर के धन्धों में ही उलझी रही। यह सारा संसार ही विकराल और भयंकर है, इसे देखकर मैं काँप उठी। इस भवसागर में मैंने बहुत कष्ट पाये और चौरासी में भटकती रही। इस जन्म में सन्तों की संगति प्राप्त करके मैंने बहुत सुख पाया और अन्तर में स्थिर हो सकी। अपने सतगुरु की पूर्ण कृपा से अब मैं भवसागर तर गयी हूँ।'' मीरा बाई कहती हैं कि हे प्रभु, आपकी कृपा से मैं सन्त के चरणों में पहुँच गयी हूँ:

अखंड वर ने वरी सहेली। हूँ तो अखंड वर ने वरी॥
कुटुँब सहोदर स्वारथना सौ। प्रपंच थी परहरी॥
जन्म धरीने महा दुख पामी। घरनो ते धंधों करी॥
सर्व संसार भयंकर कालो। ते देखी थरथरी॥
भवसागर मां महा दुख पामी। लक्ष चौरासी फरी॥
संत संगत मां महा सुख पामी। बैठी ठेकाणे ठरी॥
श्री सत गुरू नी पुरण कृपा थी। भवसागर हूँ तरी॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण। संत चरण मां पड़ी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 384

चरख़ा

इस पद में मीरा बाई कहती हैं कि मैं इस मनुष्य-देह रूपी चरख़े को किस प्रकार कातूँ क्योंकि प्रभु के बिना मेरी जीवन रूपी चरख़े की डोर बार-बार उतर जाती है। मेरे चरख़े को बड़े ही कुशल कारीगर (प्रभु) ने बनाया है। अब मैं मन की माल बनाकर चरख़ा कात रही हूँ। प्रेम रूपी पिंजियारे ने मेरे लिए रूई पींजी है और ज्ञान के पटिये पर उसकी पूनी बनायी है। परन्तु पाँच इन्द्रियाँ रूपी सखियाँ मेरे साथ कातने बैठ गयी हैं, जो सूत को ग़लत दिशा में खींच रही हैं। सुहागिन आत्माएँ* बड़ी कुशल कातनेवाली हैं, वे

* **सुहागिन आत्माएँ**=वह आत्मा जो अन्तर में प्रभु से मिलाप कर चुकी है।

सूत को गगन* में ले जाती हैं। वे ज्ञान रूपी सूत कातकर उसकी गठरी तैयार करती हैं जो सीधे सबसे ऊँची मण्डी में बिकने को जाती है। मेरे सतगुरु बड़े ही उत्तम व्यापारी हैं, वे मेरे काते हुए सूत के बदले में अनुपम वस्तु दिलाते हैं। मीरा बाई कहती हैं कि मैं हर्ष के साथ गुरु को देखती हूँ और उनके गुण गाती हूँ:

रेंटिया ने किस विध कातुं ए माय॥†
हरि बिना जीवड़ो निकस्यो जाय॥
सजन कारिगर म्हांने रेंटियो घड़ दीनो
मनसारी माल बनास्यां ए माय॥
प्रेम पीनारे म्हांने रूई पिन दीनी
ज्ञान केरि हाठ भराई ए माय॥
पांच सखियां मिल कातण बेठी
उलटाई तार चडावे ए माय॥
सुरत सवागण बड़ि कतवारण
तार गगन में ले जावे ए माय॥
ज्ञान सूत की बंधी गठडिया
सुधी सिखर गड़ जावे ए माय॥‡
सतगुरू म्हारा बड़ा हि सोदागर
सूगी वस्तु दिराइ ए माय॥§
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर
हरखि निरखि गुण गावे ए माय॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 757

---

* **गगन**=आत्मा की आन्तरिक यात्रा की दूसरी मंज़िल को गगन कहते हैं।

† **रेंटिया**=चरखा।

‡ **सुधी**=सीधी।

§ **सूगी वस्तु**=बेमिसाल, बेजोड़ चीज़।

सतगुरु की कृपा

इस छोटे-से पद में मीरा बाई अन्तर में सतगुरु के दर्शन प्राप्त करने की प्रसन्नता का वर्णन करते हुए कहती हैं कि जब मुझे अन्तर में सतगुरु मिले और उन्होंने कृपा की तो मुझे प्रभु ने दर्शन दिये। सतगुरु ने मुझे वह शब्द दिखाया जिसका मैं अंश हूँ और मेरे ध्यान को शब्द की धुन में जोड़ दिया:

मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहि पिया मिले इक छिन में। (टेक)
पिया मिल्या मोहि किरपा कीन्ही, दीदार दिखाया हरि ने॥
सतगुरु सबद लखाया अंसरी, ध्यान लगाया धुन में॥*
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 225

सोनैं काट न लागै

परम्परागत पूजा-पाठ तथा राजसी लोकाचार की उपेक्षा करने के कारण मीरा बाई की बहुत निन्दा की गयी। मेवाड़ के राणा और राज-परिवार उनसे रुष्ट थे क्योंकि उन्होंने सन्त रविदास को अपना गुरु धारण किया था। इस पद में अपने आलोचकों को उत्तर देते हुए मीरा बाई कहती हैं कि चाहे अब मेरी कितनी ही निन्दा की जाये, मैं अपने मार्ग से नहीं हटूँगी, न ही अपने गुरु से मुख मोड़ूँगी। अब मैं निन्दा और स्तुति दोनों से परे हूँ और सबकुछ सहने को तैयार हूँ:

निन्दा म्हारी भलांई करोनै, सोनैं काट न लागै। (टेर)†
जोग लियो जग जातौ देख्यौ, हरि भजबाकै काजै।

---

* **लखाय**='लखाया' अर्थात् 'दिखाया' से मीरा बाई का तात्पर्य है कि शब्द केवल सुना ही नहीं बल्कि देखा भी जा सकता है।

† **काट**=ज़ंग।

जो कोई करणीं में चूक पड़ै तो, सतगुरु म्हारा लाजै॥
धन रे लोका थांरी करणीं, कीड़ीरौ कुंजर बणायौ।*
अणदीठी अण सांमले रे, बद बद बाद उठायौ॥†
कुल कूं छाँडि कडूंबो छाँडयौ, छाँडी ममता माई।‡
और दुनियां कौ दावौ छोडयौ, छोडी लोभ बड़ाई॥
पर गल दोइ में पलो बिछायौ, मन भावै ज्यूं कहीयौ।§
यो जस मीराँ बाई गावै, ज्यूँ कहियौ ज्यौं सहियौ॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 125

दरद न जाने कोय

मीरा बाई अपने प्रियतम के वियोग में व्याकुल हैं। अपनी विरह-व्यथा में उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानों उनकी सेज सूली पर बिछी हुई है; अतएव उन्हें न नींद आती है और न ही चैन मिलता है। प्रियतम से मिलाप प्राप्त करना भी उन्हें असम्भव-सा लगता है, क्योंकि उनका वास तो नेत्रों के केन्द्र से ऊपर सूक्ष्म मण्डलों में है जहाँ वे पहुँच नहीं पा रही हैं। वे कहती हैं कि घायल की पीड़ा कोई घायल ही जान सकता है अथवा वह जान सकता है जिसने चोट लगायी है, क्योंकि उसे पता है कि उसने कितना गहरा आघात किया है। जौहर अर्थात् जौहर करनेवाली स्त्री के प्रेम, उत्साह और जोश को वही स्त्री जान सकती है जिसने जौहर द्वारा अपने प्राणों की आहुति देकर दूसरे लोक में अपने प्यारे पति से मिलाप की उत्कण्ठा हो¶। पद के अन्त में

---

* **कीड़ीरौ...बणायौ**=कीड़े को बढ़ा-चढ़ा कर हाथी का रूप दे दिया।

† बिना देखे और बिना समझे जो मन में आया सो कहा।

‡ **कडूंबो**=कुटुम्ब; **माइ**=माया।

§ **पर...बिछायौ**=निन्दा और स्तुति दोनों से परे अपना स्थान बना लिया है।

¶ मध्यकालीन राजस्थान में जौहर की प्रथा थी। जब शत्रु के घेरे के कारण क़िले और नगर की रक्षा हर प्रकार से असम्भव प्रतीत होने लगती थी तो स्त्रियाँ उत्तम वस्त्र और आभूषणों से सजकर, दुलहन की भाँति शृंगार करके अपने पति को युद्ध में जाने के लिए विदा करती थीं। उन्हें विदा करके प्रेम और वीर-रस के गीत गाते हुए वे प्रज्वलित चिता में प्रवेश करके

(शेष अगले पृष्ठ पर)

मीरा बाई कहती हैं कि उनकी वियोग की पीड़ा का उपचार सिवाय प्रियतम के और कोई नहीं कर सकता:

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोना होय।
गगन मंडल में सेज पिया की, किस बिध मिलना होय।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहर की गति जौहर जानै, की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूं बेद मिला नहिं कोय।
मीरां की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सांवलिया होय।

मीराँ व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 271

छोड़ मत जाना

मीरा बाई अपने गुरु से कहती हैं कि मैं गुणहीन और बलहीन हूँ, तुम सब प्रकार से समर्थ हो। मैं तुम्हारी हो चुकी हूँ, अब तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ? मेरी लाज तुम्हारे हाथ में है:

छोड़ मत जाज्योजी महाराज॥
में अबला बल नायँ गुसाईं, तुम ही मेरे सिरताज॥*

(पिछले पृष्ठ के फ़ुट नोट का शेष)

प्राण दे देती थीं। पुरुष युद्ध-भूमि में प्राणों की आहुति दे देते थे। युद्ध में इस प्रकार वीरगति पाना और स्त्रियों का जौहर करना बड़े गौरव की बात मानी जाती थी। यह विश्वास किया जाता था कि जौहर करनेवाली स्त्रियों का दूसरे लोक में अपने पति से मिलाप होगा। पति मिलाप के विचार से स्त्रियाँ बड़े उत्साह और जोश के साथ अग्नि में प्रवेश करती थीं।

अनेक आधुनिक पाठों में ये पंक्तियाँ 'जौहर की गति जौहर जाने, की जिन जौहर होय' कर दी गयी हैं और आम तौर पर इसका अर्थ यही किया जाता है कि रत्न की परख कुशल जौहरी ही कर सकता है अथवा वह कर सकता है जिसमें यह योग्यता हो। परन्तु जौहरी की कुशलता का भाव पूरे पद में वर्णित विरह की तीव्र और प्रियतम के मिलाप की आकाँक्षा के साथ मेल नहीं खाता।

* **नायँ**=नहीं।

में गुणहीन गुण नायँ गुसाईं, तुम समरथ महाराज॥
थाँरी होय के किणरे जाऊँ, तुम ही हिवड़ा रो साज॥*
मीराँ के प्रभु और न कोई, राखो अब के लाज॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 322

अनमोल अवसर

सभी सन्त कहते हैं कि मनुष्य-जन्म परमात्मा को प्राप्त करने का अमूल्य अवसर है जो बार-बार नहीं मिलता। परन्तु मनुष्य व्यर्थ के धन्धों और संसार की मोह-माया में उलझकर इस अवसर को हाथ से गँवा देता है, वह वापस चौरासी के चक्र में चला जाता है। मीरा बाई कहती हैं कि आयु पल-पल बढ़ रही है और उसके साथ ही हमारे इस जगत में रहने की अवधि भी प्रतिपल घट रही है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि नाम रूपी नौका पर सवार होकर इस भवसागर को पार कर ले:

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
क्या जानूँ कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार॥
बढ़त पल पल, घटत छिन छिन जात न लागे वार।
बिरछ के ज्यों पात टूटै लगे नहीं पुनि डार॥
भौ सागर अति जोर कहिये विषम ऊँडी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार॥
ज्ञान चौसर मंडी चोहटे, सुरत पासा सार।
या दुनिया में रची बाजी, जीत भावैं हार॥†
साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दास मीराँ लाल गिरधर, जीवणा दिन च्यार॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 747

* **थाँरी**=तुम्हारी; **किणरे**=किसके पास; **हिवड़ा**=हृदय।

† यह दुनिया चौपड़ की बाज़ी के समान है, मनुष्य ज्ञान रूपी पासा फेंककर आत्मा रूपी सार (या गोट) को अपने निज-घर पहुँचा दे अथवा अज्ञान में उलझा रहकर बाज़ी हार जाये।

हुआ समुद्र से मेल

जब किसी साधारण मनुष्य की पहुँच किसी राजा के घर तक हो जाती है तो उसकी सभी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। वह संसार की साधारण वस्तुओं के लिए नहीं तरसता। मीरा बाई इस उदाहरण को लेकर कहती हैं कि उन्होंने बड़े घर अर्थात् प्रभु के धाम में प्रवेश पा लिया है, जिसके फलस्वरूप उनके मन की कामनाएँ और तृष्णाएँ दूर हो गयी हैं। कुछ दृष्टान्तों के द्वारा वे सन्तों के मार्ग के इस पक्ष को स्पष्ट करती हैं कि जब मनुष्य की लगन अन्तर में प्रभु की ओर लग जाती है तो वह अपने आप ही संसार और उसके पदार्थों की ओर से अनासक्त या विरक्त हो जाता है। जब किसी को आन्तरिक आनन्द के अमृत का स्वाद आ जाता है तो वह अपने आप ही संसार के गन्दे पोखरों के पानी से मुख मोड़ लेता है:

बडे घर ताली लागी रे, म्हाँरा मन री उणारथ भागी रे॥*
छीलरिये म्हाँरो चित्त नहीं रे, डाबरिये कुण जाव॥†
गंगा-जमना सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाय मिलूँ दरियाव॥
हाल्याँ मोल्याँ सूँ काम नहीं रे, सीख नहिं सिरदार॥‡
कामदाराँ सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाब करूँ दरबार॥§
काच कथीर सूँ काम नहीं रे, लोहा चढ़े सिर भार॥
सोना रूपा सूँ काम नहीं रे, म्हाँरे हीराँ रो बौपार॥
भाग हमारो जागियो रे, भयो समँद सूँ सीर॥¶
अम्रित प्याला छाँडिके, कुण पीवे कड़वो नीर॥
पीपा कूँ प्रभु परचो दियो रे, दीन्हा खजीनो पूर॥**
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर॥††

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 397

---

* **ताली**=ध्यान, समाधि, तारी; **उणारथ**=कामना या तृष्णा।

† **छीलरिये**=गंदे पानी का तालाब; **डाबरिये**=छोटा तालाब।

‡ **हाल्याँ मोल्याँ**=नौकर-चाकर; **सीख...सिरदार**=सरदारों को मन्त्रणा की ज़रूरत नहीं।

§ **जाब**=जवाब अर्थात् बात; **दरबार**=राजा।

¶ **सीर**=सम्बन्ध, मेल।

** **पीपा**=राजा पीपा, जो कि मीरा बाई की भाँति सन्त रविदास के शिष्य थे।; **खजीनो**=ख़ज़ाना।

†† **छै**=है।

मगन होय मीरा चली

मीरा बाई कहती हैं कि प्रभु के प्रेम में मगन होकर वे उससे मिलने के लिए चल पड़ी हैं। लोक-लाज, कुल की मर्यादा, मान-अपमान आदि बन्धनों को त्यागकर उन्होंने आत्म-ज्ञान की गली में प्रवेश किया है। आन्तरिक मण्डलों का संकेत देते हुए वे कहती हैं कि तीनों गुणों से परे लाल किवाड़ वाले महल की अटारी पर उनके प्रियतम, प्रभु की सेज बिछी है। शुभ गुणों रूपी आभूषणों से सुशोभित होकर वे सुमिरन रूपी थाल हाथ में लिये प्रभु-मिलाप को जा रही हैं। अब उनकी वृत्ति संसार की ओर से हटकर आँखों के केन्द्र से ऊपर सुखमना में लगी हुई है:

तेरो कोई नहिं रोकणहार, मगन होय मीराँ चली॥
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर सैं दूरि करी।
मान अपमान दोउ धर पटके, निकसी हूँ ग्याँन गली॥
ऊँची अटरिया लाल किंवड़िया, निरगुण सेज बिछी।
पँचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली॥
बाजूबंद कडूला सोहै, सिन्दुर माँग भरी।
सुमिरन थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधिक खरी॥
सेज सुखमणा मीराँ सोवे, सुभ है आज घरी।*
तुम जावो राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 390

---

* **सुखमणा**=दोनों आँखों के मध्य से ऊपर की ओर जानेवाले आत्मिक मार्ग को सन्तों ने 'सुखमना' और 'सुखमन' कहा है। यह योगियों की सुषुम्ना से भिन्न है।

राम खुमारी

प्रभु-प्रेम रूपी मदिरा के खुमार में मीरा बाई आत्म-विस्मृत हो गयी हैं। सतगुरु ने आन्तरिक भेद प्रकट कर दिया है और भ्रम का द्वार तोड़ दिया है। शब्द की ध्वनि और प्रकाश का वर्णन वर्षा, बिजली, मेघ-गर्जना आदि से करते हुए वे कहती हैं कि शब्द की धुन और प्रकाश के सहारे वे अगम अटारी में पहुँचेंगी:

लागी मोहिं राम खुमारी हो॥
रमझम बरसै मेहड़ा भीजै तन सारी हो।
चहुँ दिस दमकै दामणी गरजै घन भारी हो॥
सतगुरू भेद बताइया खोली भरम किंवारी हो।
सब घट दीसै आतमा सबही सूँ न्यारी हो॥
दीपक जोउँ ज्ञान का चढ़ूँ अगम अटारी हो।
मीराँ दासी राम की इमरत बलिहारी हो॥*

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 842

मुझे लगन लगी

जब अभ्यासी आँखों के केन्द्र से ऊपर आत्मिक मण्डलों में प्रवेश करता है और अन्दर शब्द के प्रकाश और ध्वनि के सम्पर्क में आता है तो उसके हृदय में सच्चा प्रेम जाग्रत होता है और उसके अन्दर प्रभु को प्राप्त करने की तथा अपने निज-घर पहुँचने की लगन लग जाती है:

मुझे लगन लगी प्रभु पावन की।
पावन की घर आवन की॥
छोड़ काज अरू लाज जगत की।
निसदिन ज्ञान लगावन की॥

---

* **इमरत...हो**=प्रेम रूपी अमृत पर बलिहार जाती हूँ।

सुरत उजाली खुल गई ताली।*
गगन महल में जावन की॥
झिलमिलकारी ज्योति निहारी।
जैसे बिजली सावन की॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
हरख निरख गुण गावन की॥

मीराँ सुधा-सिंधु, पृ. 381

दूसरा न कोई

मीरा बाई कहती हैं कि परमात्मा के नाम के सिवाय इस संसार में उनका कोई नहीं है। सन्तों की संगति के फलस्वरूप वे लोक-लाज आदि सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो गयी हैं:

अब तो मेरा राम नाम दूसरा न कोई॥
माता छोड़ी पिता छोड़े, छोड़ा सगा भाई।
साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई॥
संत देख दौड़ आई, जगत देख रोई।
प्रेम आंसु डार डार, अमर बेल बोई॥
मारग में तारग मिले, संत राम दोई।†
संत सदा शीश रखूं, राम हृदय होई॥
अंत में से तंत काढयो, पीछे रही सोई।‡
राणे भेज्या विष का प्याला, पीवत मस्त होई॥

---

* आँखों के पीछे दसवें द्वार का ताला खुल गया और आत्मा प्रकाश-मण्डल में पहुँच गयी।

† **तारग**=तारनेवाला।

‡ मैंने अन्त अथवा परम सत्य में से सार-तत्त्व को निकाल लिया है और मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि जो वह है वही मैं हूँ। 'सोई' का अर्थ कुछ विद्वानों ने सोहं किया है।

अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई।
दास मीराँ लाल गिरधर, होनी हो सो होई॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 410

दीया बिन अँधेरा

इस गुजराती पद में मीरा बाई मनुष्य-शरीर की तुलना एक मन्दिर से करते हुए कहती हैं कि समय और आयु के साथ यह शरीर रूपी मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होकर गिरनेवाला है। इसकी दीवारें काँप रही हैं, खम्भे कमज़ोर हो गये हैं और नींव इसका भार सँभालने में असमर्थ है। अब मनुष्य दीया जलाने के लिए हाथ में कटोरी लेकर एक घर से दूसरे घर तेल उधार माँगना शुरू करता है। परन्तु अब बहुत देर हो गयी, आत्मा रूपी व्यापारी ने दुकान बन्द कर दी और यमदूत उसमें ख़ुशी से नाच रहे हैं। वे कहती हैं कि प्रभु के प्रेम द्वारा उन्होंने अपने जीवन को सार्थक बना लिया है और वे यमदूतों को आसानी से भगा देती हैं:

मंदरिया में दीवडा बिनानुं अंधारूं॥
खलमल्यां देवल उभी रही थांभली रे,
त्राटुं नहि झीले एनो भार रे॥
हाथ मां वाटकडी घरोघर घुमती रे,
कोई द्यो तेल ओधारूं॥
उठि गयो वाणीयो ने पड़ी रही हाटडी रे,
जमडा करे छे धींगाणुं॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर,
आवतां जमडा ने पाछो वालुं॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 754

मंदिर में बिन दीये अँधेरा॥
काँपता है मंदिर, स्तम्भ उसके जर्जर,
नींव न उठा पाये भार॥

हाथ में कटोरा ले घूमती घर-घर,
दो कोई तेल उधार॥
उठ गया बनिया, खाली दुकान है,
हो ख़ुश यम करते शोर॥
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर,
आएँ यम दूँ पीछे मोड़॥

(ऊपर दिये गुजराती पद का हिन्दी अनुवाद)

सत्संग का रस

यह भी मीरा बाई का एक गुजराती पद है जिसमें वे मनुष्य को सन्तों की संगति में जाने की प्रेरणा देती हैं। सत्संग का रस शुरू में कड़वा लगता है, क्योंकि मन को स्थिर तथा नियन्त्रित होना पसन्द नहीं है परन्तु निरन्तर सन्तों की संगति में रहने से मन पर सत्संग का रंग चढ़ने लगता है और वह उसमें रस लेने लगता है। हाथी, घोड़े, धन-दौलत कोई भी जीव के साथ नहीं जाते, यहाँ तक कि शरीर भी अन्त में ख़ाक हो जाता है। वे कहती हैं कि इन सबका गर्व करना व्यर्थ है, क्योंकि ये जीव के निरन्तर बन्धन का कारण हैं। सत्संग के द्वारा अल्प समय में मुक्ति प्राप्त होती है, वेद-शास्त्र और धर्म-ग्रन्थ इस बात की साक्षी देते हैं:

सत्संग नो रस चाख प्राणी, तुं तो सत्संग नो रस चाख॥*
प्रथम लागे तीखो ने कडवो, पछी आंबा केरी शाख॥†
आरे काया नो गर्व न कीजे, अंते थवानी छे खाख॥‡
हस्तीने घोड़ा माल खजाना, कांई न जावे साथ॥

---

* **नो**=का।

† **ने**=और; **पछी**=बाद में; **केरी**=की।

‡ **छे खाख**=अन्त में ख़ाक होनेवाली है।

सत्संगथी बे घड़ीमां मुक्ति, वेद पुरे छे साख॥*
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरि चरणे चित राख॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 772

सत्संग का रस चख ले प्राणी, चख सत्संग का रस॥
पहले तो यह तीखा कड़वा, फिर जैसा आम का रस॥
इस काया का गर्व न कर तू, अन्त में हो यह राख॥
हाथी घोड़ा माल ख़ज़ाना, कोई न जाये साथ॥
सत्संग से दो घड़ी में मुक्ति, साक्षी वेद-पुराण॥
मीरा कहे प्रभु गिरधर के गुण, हरि चरनन चित राख॥

(ऊपर दिये गुजराती पद का हिन्दी अनुवाद)

दर्शन दीजो जी

मीरा बाई अपने सतगुरु से प्रार्थना करते हुए कहती हैं कि जैसे भी आप चाहें मेरी सुधि लें, मेरे अवगुणों की ओर ध्यान न दें। मैं आपकी शरण में आयी हूँ, मुझे दर्शन दें और फिर कभी अपने से दूर न करें:

म्हारी सुध ज्यूँ जानो ज्यूँ लीजो जी। (टेक)
पल पल भीतर पंथ निहारूँ, दरसण म्हाँने दीजो जी॥
मैं तो हूँ बहु औगणहारी, औगण चित्त मत दीजो जी॥
मैं तो दासी थारे चरण-जनाँ की, मिल बिछुरन मत कीजो जी॥
मीराँ तो सतगुरु जी सरणे, हरि चरणाँ चित्त दीजो जी॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 193

* **बे**=दो।

विरह-व्यथा

अपने प्रियतम के दर्शन के लिए व्याकुल मीरा बाई इस पद में अपनी विरह-व्यथा व्यक्त करती हैं। प्रभु के वियोग में उन्हें पल भर के लिए भी चैन नहीं मिलता। उनकी एक-एक रात छः महीने की हो गयी है और वे इस प्रकार तड़प रहीं हैं मानों उनके हृदय में करवत चल रही हो:

दरस बिन दूखन लागे नैन॥ टेक॥
जब से तुम बिछरे मेरे प्रभु जी, कबहुँ न पायों चैन।
सबद सुनत मेरी छतियाँ कंपै, मीठे लगे तुम बैन॥
एक टकटकी पंथ निहारूँ, भई छमासी रैन॥
बिरह बिथा कासूँ कहुँ सजनी, बह गइ करवत अैन॥
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटन सुख देन॥

मीराबाई की शब्दावली, पृ. 20

कुँवारी क्यों रही

प्रभु-साक्षात्कार को मीरा बाई ने आत्मा का विवाह कहा है। नव-विवाहित आत्मा जब प्रभु के धाम पहुँचती है तो अन्य सुहागिन आत्माएँ उससे पूछती हैं कि तू इतने समय तक कुँआरी क्यों रही? आत्मा उत्तर देती है कि वह युगों-युगों से कुँआरी ही रहती आयी है क्योंकि उसे सतगुरु नहीं मिले। सतगुरु ही उसके लिए वर ढूँढ़कर, विवाह का लगन निश्चित करके उसका हाथ प्रभु रूपी वर के हाथ में दे सकते थे। दूसरे शब्दों में प्रभु का मिलाप तब तक नहीं हो सकता जब तक सतगुरु न मिलें।

विवाह का वर्णन करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि सतगुरु ने आन्तरिक मण्डलों में विरह की वेदी रची, प्रभु से हथ-लेवा जोड़ा और दहेज में प्रेम रूपी रत्न, ज्ञान के गहने और नाम का हार दिया। इस प्रकार विवाहित

आत्मा शब्द रूपी ढोल के साथ रूहानी मण्डलों पर चढ़कर पति के घर पहुँच गयी:

सुरता सवागण नार कुंवारी क्यूं रही।
　　सतगुरू मिलिया नांय कुंवारी बीरा यूं रही॥
सतगुरू बेगि मिलाय छिन में सावा सोदिया।*
　　झटपट लगन लखाय ब्याव बेगो छेड़िया॥
अड़द सुड़द के बीच रतन चंवरी रची।†
　　हर हतलेवा जोड़ सुरत फेरा फरे॥
भाभल दीयो डाइजो रतन धन चार पदारथ प्रेम रा।‡
　　गेणो म्हारे ज्ञान रो पैरायो हार हर नाम रा॥
छोड़या छोड़या मामा मोसाल भुवा दस बेनड़ी।§
　　छोड़यो म्हारी सहेल्यां रो साथ गुरां आगे जा खड़ी॥¶
परण परणाय घणा दिन रही म्हारा बाप रे।**
　　अब म्हूँ चढ़ गई ढोल बजाय घर चाली आपणे॥††
भँवर गुफा रे मांय पुरुष एक सार है।
　　सत सत कहे मीराँ दास वही भरतार है॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 846

---

* **सोदिया**=विवाह का लग्न निकाला।

† **अड़द सुड़द**=अरध-उरध (अर्ध-उर्ध), आँखों के केन्द्र अथवा तीसरे तिल को सन्तों ने 'अरध' तथा पारब्रह्म के मण्डल को 'उरध' कहा है। अर्ध-उर्ध के बीच से मीरा बाई का आशय उस निर्मल चेतन देश से है जो मन और माया से परे है और जो आत्मा के आन्तरिक मार्ग में तीसरी मंज़िल है।

‡ **भाभल**=पिता; **डाइजो**=दहेज।

§ **मोसाल**=पाँच विकार; **भुवा**=तृष्णा और कामनाएँ; **दस बेनड़ी**=दस इन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

¶ **सहेल्यां**=पच्चीस प्रकृतियाँ।

** संसार रूपी पीहर।

†† **म्हूँ**=मैं।

नाम-रतन धन

इस पद में मीरा बाई नाम की प्रशंसा करते हुए कहती हैं कि मुझे यह अनमोल धन मेरे सतगुरु ने दिया है और मुझे कृपा करके अपना लिया है। इस दुर्लभ पदार्थ को पाकर मैंने जग में जो कुछ भी अपना था उसे खो दिया है अर्थात् अब संसार की सभी वस्तुएँ मेरे लिए सारहीन हो गयी हैं। मैं सच्चे नाम की नौका में बैठ गयी हूँ जिसको खेनेवाला सतगुरु है जो मुझे भवसागर से पार करा देगा:

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो॥ टेक॥
बस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो॥
खरचै नहिं कोइ चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तर आयो॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो॥

मीराबाई की शब्दावली, पृ. 24

मैं अपना घर जानी

इस पद में मीरा बाई अपने निज-घर जाने की व्यग्रता प्रकट करते हुए कहती हैं कि अब उन्होंने अपने मन में निश्चय कर लिया है कि वे आन्तरिक मण्डलों में जायेंगी। अभी तक उन्हें अपने असली घर का भेद बतानेवाला कोई नहीं मिला था। इसलिए वे इस संसार में विभिन्न खानियों (योनियों) में जन्म लेती रहीं और प्रभु से वियोग की पीड़ा सहती रहीं। परन्तु इस जन्म में जब उन्हें अपने सतगुरु सन्त रविदास मिल गये तो उनकी व्यथा का अन्त हो गया। सतगुरु ने अपने घर का भेद प्रदान किया और उनकी आत्मा को शब्द रूपी चिह्न (सहदानी) देकर अपने प्रियतम से मिला दिया:

मीराँ मन मानी सुरत सैल असमानी। (टेक)
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी॥

ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी॥
रात दिवस मोहि नींद न आवत, भावे अन्न न पानी॥
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी॥
ऐसा बैद मिलै कोइ भेदी, देस बिदेस पिछानी॥
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी॥
खोजत फिरूं भेद वा घर को, कोइ न करत बखानी॥
रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु, दीन्हीं सुरत सहदानी॥
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी॥
मीराँ खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 207

भक्ति करे कोई सूरमा

इस पद में मीरा बाई कहती हैं कि वे प्रभु के प्रेम में इतनी लीन हो गयीं है कि उन्हें प्रभु से भिन्न कुछ भी दिखायी नहीं देता। जिस प्रकार सागर की लहरों पर तैरती हुई नौका पर किनारों की चहल-पहल और जश्न का कोई असर नहीं पड़ता, इसी प्रकार संसार के मोह और आकर्षण का अब उन पर कोई प्रभाव नहीं है। कबीर साहिब, पलटू साहिब तथा अन्य सन्तों की तरह वे भी कहती हैं कि भक्ति के मार्ग में वही सूरमा सफल हो सकता है जिसने अपना सिर उतारकर, अर्थात् अपने अहंकार, मान और अपमान को त्यागकर इस मार्ग को अपनाया है:

मैं ओलग्यो रामरो, जाकूं विलग न लागे कांई ए॥*
चढ़ी विलोले नांव रे, जाको बाण न लागे आई ए॥†

* **ओलग्यो रामरा**=प्रभु का प्रेमी; **विलग**=भिन्न।
† **विलोले**=लहरों का उतार चढ़ाव।

बायां ए बायां बेनडयां, थांसु भगति न होय ए।*
भगति करे कोइ सूरवाँ, ज्याका धड़ पर सीस न कोई ए॥
शूरा खेत वुहारणा, हरि मिलवा कै काज लड़ाई ए।
कायर कायर भाजिया, सूरा रह्या रण मांह्य रे॥
मीराँ कहे जग जाय है, यामें रहतो न दीसे कोई ए।
रहेसी रामजी रा साधवा, ज्यारे कुलवध्धा न होई ए॥†

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 775

प्रतीक्षा

सतगुरु तथा प्रभु के दर्शन के लिए व्याकुल मीरा बाई कहती हैं कि हे प्रभु, मैं आपकी बाट जोह रही हूँ। आप मेरे हृदय रूपी महल में कब आयेंगे? यदि आप आज दर्शन नहीं देंगे तो प्रभात होते ही मैं अपना समस्त राजसी ऐश्वर्य त्याग दूँगी। हे सतगुरु, आप आकर मेरी सुधि लें, आपकी भेंट के लिए मैं प्रेम का प्याला लिये खड़ी हूँ। मेरी आत्मा निज-नाम से जुड़ी हुई है और आप ही मेरे सर्वस्व हैं:

आज्यो आज्यो गोविन्दा म्हारे म्हैल,
    निहाराँ थारी बाटड़ली खड़ी जी, म्हारै आज्यो॥
तन का त्यागूँ कापड़ा जी, ऊगंते परभात।
खड़ी जोवती राह में जी, सतगुरू पोंछे आय।
    पियालो लियाँ हाज़िर खड़ी जी॥
साधु हमारी आतमा जी, हम साधुन की देह।
रोम रोम में रम रही जी, ज्यूं बादल में मेह।
    सुरत हरि नाम से लगी जी॥

---

* **बेनडयां**=बहनों; **थांसु**=तुमसे।

† **कुलवध्धा**=कुल की बाधा; उच्च कुल की भावना की रुकावट।

मीराँ हरि की लाडिली जी, तुम मीराँ के स्याम।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दरसण द्यो म्हारे राम।
सुरत निज नाम से लगी जी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 207

चितवो मेरी ओर

विरह में व्याकुल मीरा बाई प्रभु को उलाहना देते हुए कहती हैं कि मैं निरन्तर तेरा ही ध्यान और चिन्तन करती रहती हूँ, परन्तु तू इतना कठोर हृदय है कि एक क्षण के लिए भी मेरी ओर नहीं देखता। मुझे तो केवल तेरी एक दृष्टि की ही आशा है, इसके सिवाय मुझे और कुछ नहीं चाहिए। हे प्रभु, मुझ जैसे तेरे लाखों प्रेमी हैं परन्तु मेरे लिए तो एक तू ही है, तेरे दर्शन पर मैं अपने प्राण न्योछावर कर दूँगी:

तनक हरि चितवौ जी मोरी ओर॥
हम चितवत, तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर॥
मेरे आसा चितवनि तुमरी, और न दूजी दोर॥
तुम से हमकूँ एक होजी, हमसी लाख करोर॥
ऊभी ठाड़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, देस्यूँ प्राण अकोर॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 471

पानी में मीन प्यासी

परमात्मा की खोज में भटकते हुए लोगों पर व्यंग्य करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि बाहर उसकी तलाश करना इतना ही हास्य-प्रद है जितना यह कहना कि पानी में मछली प्यासी है। पद के अन्त में वे कहती हैं कि सहज के मार्ग द्वारा उन्होंने अपने अन्तर में परमात्मा को प्राप्त कर लिया है:

पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन सुन आवत हाँसी। (टेर)
आत्मज्ञान बिन नर भटकत है, कहां मथुरा कहां कासी॥
भवसागर सब हार भरा है, ढूंढत फिरत उदासी॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अबिनासी॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 136

हरि है हृदय माहिं

परमात्मा मनुष्य के अन्दर है परन्तु उसके और आत्मा के बीच में मन और माया का परदा पड़ा हुआ है। मीरा बाई प्रार्थना करती हैं कि हे स्वामी, अन्तर का पट खोलकर मुझे दर्शन दे। तन, मन और आत्मा को तेरे प्रेम में संजोकर मैं तेरे चरणों में नत होती हूँ। तेरे लिए मैंने कुल की लाज छोड़ दी है और तेरी बाँदी बन गयी हूँ, कृपा कर और मुझे अपना ले:

जागो म्हारा जगपतिराइ, हँसि बोलो क्यूँ नहीं।
हरि थे छो जी हिरदा मांहि, पट खोलो क्यूँ नहीं। (टेर)
तन मन सुरति सँजोइ, सीस चरणाँ धरूँ।
जहाँ जहाँ देखूँ म्हारो राम, जहां सेवा करूँ॥
सदकै करूँजी सरीर, जुगै जुग वारणौं।
छोड़ी छोड़ी कुल की लाज, साहिब तेरे कारणौं॥
थोड़ी थोड़ी लिखूं सिलाम, बहोत करि जाणज्यौ।
बंदी हूं खानाज़ाद, महरि करि मानज्यौ॥*
हां हो म्हारा नाथ सुनाथ, विलम नहिं कीजियै।
मीराँ चरणां की दासी, दरस अब दीजियै॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 77

* **महरि**=मेहर, कृपा।

हरि-भजन की वेला

मनुष्य-जन्म परमात्मा की भक्ति करके मुक्ति प्राप्त करने का अवसर है, परन्तु मनुष्य भक्ति की सही रीति को नहीं जानता। मीरा बाई कहती हैं कि भक्ति का मार्ग और प्रभु का भेद वही जान सकता है जो स्वयं इस मार्ग को तय करके प्रभु से मिलाप कर चुका हो। ऐसा व्यक्ति प्रभु के निरन्तर सम्पर्क में रहता है और हमें उस अगम धाम के वृत्तान्त प्रदान कर सकता है।

संसार में साधक की रहनी कैसी होनी चाहिए, इस ओर संकेत करते हुए वे कहती हैं कि साधक को चाहिए कि वह संसार के गहरे पानी में न उतरे बल्कि किनारे पर बैठकर स्नान करे अर्थात् वह अपने सांसारिक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व निभाये, परन्तु संसार में आसक्त न हो:

मारे हरि भज्यानी छे वेला रे,
भेदु विना* कोने कहीए।
भेदुड़ा होय ते भेद पीछाणे संतो,†
अगम नीगम नी खबरो लइए रे॥
उंडा रे नीर जोइने मांहे ना धसीए संतो।‡
कांठडे बेठां बेठां नाहीए रे॥§
मायानु रूप जोइने मन ना डगावीए संतो।
प्रभु थी प्रीत लगावीए रे॥¶
बाइ मीराँ कहे प्रभु गिरिधर केरा व्हाला।**
चरण कमल चित लइए रे॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 753-54

---

* **भेदु**=भेद बताने वाला।

† **भेदुड़ा**=भेद को जाननेवाला।

‡ **जोइने**=देखकर।

§ **कांठडे**=किनारे।

¶ **थी**=से

** **व्हाला**=की प्रेमिन।

होली

मीरा बाई मनुष्य-जन्म के महत्त्व की ओर संकेत करते हुए कहती हैं कि यह बसन्त ऋतु के समान अल्प काल के लिए प्राप्त हुआ है। यह होली खेलने का अवसर है। किन्तु उनकी होली दिव्य आत्मिक आनन्द में लीन होना है। वे उन चेतन आत्मिक मण्डलों में होली खेलती हैं जहाँ पर बिना वाद्य के संगीत हो रहा है, बिना स्वर के रागिनियाँ हो रही हैं और अनहद की दिव्य ध्वनि रोम-रोम में समा रही है। शील और सन्तोष का केसर घोलकर, प्रीति को पिचकारी में भरकर आत्मा आन्तरिक मण्डलों में होली खेल रही है*:

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे॥
बिन करताल पखाबज बाजै, अनहद की झनकार रे।
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै, रोम रोम रणकार रे॥
सील सँतोख की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर, बरसत रंग अपार रे॥†
घट के पट सब खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल बलिहार रे॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 893

नयनों पर बलिहारी

भक्ति और प्रेम के इस गुजराती पद में मीरा बाई कहती हैं कि मैं अपने स्वामी के नयनों पर बार-बार बलिहार जाती हूँ। मेरे प्रभु ने मुझे हृदय से लगाकर अपना लिया है, अब उन्हें पल भर के लिए भी अलग नहीं होने दूँगी। उनके साथ मैं गहरे स्नेह के बन्धन में बँध गयी हूँ, अब मैं प्रेमपूर्वक

---

* प्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक श्री आर. डी. रानाडे कहते हैं, "इस पद में ध्वनि और रंग मीरा बाई के आत्मिक अनुभव का एक उत्तम दृष्टान्त है।"[1]

† यह त्रिकुटी के प्रकाश और शब्द की ओर संकेत है।

उन्हीं के गुणगान करूँगी। अब मुझे सांसारिक काम-काज नहीं सुहाते और मैं अपने घर में ही आत्म-विस्मृत हो पागल के समान हो गयी हूँ। मैं तो यही चाहती हूँ कि जैसे भी हो मुझे सन्तों का समागम मिले और जहाँ भी वे हों, मैं दौड़कर जाऊँ। गंगा-जमुना मेरे घर में ही हैं, अब मैं क्यों तीर्थों में जाऊँ? सन्त के चरण अड़सठ तीर्थ हैं और उनकी चरण-धूलि ही मेरे लिए त्रिवेणी स्नान है। अब एकादशी आदि व्रत क्यों करूँ, मैं तीन बार भोजन करती हूँ। वे कहती हैं कि प्रभु के प्रेम में ही उन्हें हरि-रस प्राप्त हो रहा है:

मारा नाथनां नैणाँ ऊपर रे, हुं तो घड़ीये वारी जावूं।
घड़ीये वारी जावूं वालिड़ा, हुं तो घड़ीये वारी जावूं॥
प्रभुजी मने कंठे वलग्या। पलकोरे न थावूं।
शामला साथे स्नेह बंधाणो। हेते हरि गुण गावूं॥
काम काज मुंने कांई न सूझे। ने घरमां घेली थावूं।
संत समागम जियां होय तियां। हरखे दोड़ी आवूं॥
गंगारे जमुना घरने आंगणे। तीरथ क्यां क्यां जावूं।
अडसठ तीरथ संतने चरणे। नित्य त्रिवेणी मां न्हावूं॥
एकादशी व्रत कोण करे। हुं तो त्रणे टाणा खावूं।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण। हेते हरि रस पावूं॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 515

मनुष्य-जन्म

मनुष्य-जन्म परमात्मा की एक अनुपम देन है जो बार-बार नहीं मिलती। यह नाम का अभ्यास करने और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने का अवसर है। मीरा बाई कहती हैं कि मुझे सतगुरु मिल गये और उनकी कृपा से सत्य का बोध हो गया:

मनखा जनम पदारथ पायो, ऐसी बहुर न आती॥*
अबके मोसर ज्ञान विचारो, रामनाम मुख गाती।†
सतगुरू मिलिया सुंज पिछाणी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती॥‡
सगुरा सूरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती।
मगन भया मेरा मन सुख में, गोबिंद का गुण गाती॥
साहब पाया आदि अनादि, नातर भव में जाती।§
मीराँ कहे इक आस आपकी, औराँ सूँ सकुचाती॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 847

नाम से नेह

इस छोटे पद के प्रारम्भ में मीरा बाई कहती हैं कि उनका परमात्मा के नाम से प्रेम हो गया है और उनका प्रियतम उनके अन्तर में बस गया है। इस प्रकार वे परमात्मा और नाम की एकता प्रकट करती हैं। सभी सन्त कहते हैं कि नाम और नामी में कोई भेद नहीं है अर्थात् नाम और परमात्मा एक हैं:

हरि नाम से नेह लाग्यो रे, अब लाग्यो रे म्हारे
हरि नाम से नेह लाग्यो॥
यो रसियो म्हारे मन में बसियो। ज्यूँ माला बिच तागो रे॥
सब में बसत सबहि से न्यारो। नहिं नेड़ो नहिं आगो रे॥¶
दासी मीराँ शरण श्याम की। जीवन मरण भय भागो रे॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 871

---

* **मनखा**=मनुष्य का।
† **मोसर**=अवसर।
‡ **सुंज पिछाणी**=सूझ, सत्य का बोध।
§ **नातर**=नहीं तो।
¶ **नहिं...रे**=न पास है न दूर है।

गुरु-पद-रज की प्यासी

गुरु-पद-रज की प्यासी मीरा बाई विरह-व्याकुल हो अपने गुरु से प्रार्थना करती हैं कि आपसे बिछुड़कर मैं असह्य दुःख पा रही हूँ, जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। जैसे जल के बिना मछली तड़पती है और चकवी रात्रि के समय अपने प्रिय के वियोग में व्यथित होती है, उसी प्रकार आपके दर्शन के बिना मैं व्याकुल हूँ। हे सतगुरु, आप मेरे जीवन में वह दिन कब लायेंगे जब आप मेरे अन्तर में प्रकट होंगे:

म्हारा सतगुर बेगा आज्योजी, म्हारे सुख री सीर बुवाज्यो जी। (टेक)*
तुम बीछड़ियाँ दुख पाऊं जी, मेरा मन माँही मुरझाऊं जी॥
मैं कोइल ज्यूं कुरलाऊं जी, कछु बाहरि कहि न जणाऊं जी॥
मोहि बाघण विरह सतावे जी, कोई कहियां पार न पावै जी॥
ज्यूं जल त्यागा मीना जी, तुम दरसन बिन खीना जी॥
ज्यूं चकवी रैण न भावै जी, वा ऊगो भाण सुहावै जी॥†
ऊ दिन कबै करोला जी, म्हारे आँगण पांव धरोला जी॥
अरज करै मीराँ दासी जी, गुरुपद-रज की प्यासी जी॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 192

विरह-बाण

कबीर साहिब अपने दोहों में कहते हैं कि सतगुरु ने मुझे शब्द का बाण मारा है और मैं 'मृत' हो गया हूँ। यहाँ दो पदों में मीरा बाई इसी भाव को प्रकट करती हैं। सतगुरु ने उन्हें विरह में बुझे हुए तीर से घायल कर दिया है, वे अपने तन की सुधि खो चुकी हैं और केवल अन्तर में गुरु के मिलाप की राह देख रही हैं। वे कहती हैं कि इस भेद को कोई नहीं जानता कि वास्तव

---

* **म्हारे...जी**=मेरे अन्तर में मिलन रूपी सुख का बीज बोइये।

† **ऊगो भाण**=उगा हुआ सूर्य।

में सतगुरु ने उन्हें ऐसी औषधि दी है जिसके द्वारा संसार की ज्वाला में तप्त उनके तन, मन और प्राणों में शीतलता और शान्ति आ गयी है :

भर मारी रे बाना मेरे सतगुरु बिरह लगाय के। (टेर)*
पाँवन पंगा कानन बहिरा, सूझत नाँही नैना॥
खड़ी खड़ी रे पंथ निहारूं, मरम न कोई जाना॥
सतगुरु औषध ऐसी दीन्ही, रूम रूम भई चैना॥†
सतगुरु जस्या बैद न कोई, पूछो बेद पुराना॥‡
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अमर लोक में रहना॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 161

दूसरे पद में मीरा बाई उसी भाव को प्रकट करते हुए कहती हैं कि विरह की व्याकुलता उन्हें अपने सतगुरु से प्राप्त हुई है। उनका मन जो निरन्तर गतिशील और चंचल था अब प्रेम रूपी ज़ंजीर में बँधकर स्थिर हो गया है :

री मेरे पार निकस गया, सतगुरु मार्‍या तीर । (टेक)
विरह-भाल लागी उर-अंतरि, ब्याकुल भया सरीर॥
इत-उत चित चलै नहिं कब हूँ, डारी प्रेम-जँजीर॥
कै जाणै मेरो प्रीतम प्यारो, और न जाणै पीर॥
कहा करूँ मेरो बस नहिं सजनी, नैन झरत दोउ नीर॥
मीराँ कहै प्रभु तुम मिलियाँ बिन, प्राण धरत नहिं धीर॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 271

---

* **बाना**=बाण, तीर।

† **रूम रूम**=रोम-रोम।

‡ **जस्या**=जैसा।

सतगुरु की शरण

मीरा बाई कहती हैं कि बिना सतगुरु की शरण के जीव परम-पद प्राप्त नहीं कर सकता और न ही नाम के बिना वह इस चौरासी के चक्कर से मुक्त हो सकता है। परन्तु मूर्ख प्राणी सन्तों की संगति पसन्द नहीं करता और नाम से विमुख रहता है। इस प्रकार वह अपने कर्मों के बोझ को और बढ़ाता है तथा अनेक प्रकार के दु:ख पाता है:

रमइया बिनि यो जिवड़ौ दुख पावै, कहौ कुण धीर बँधावै। (टेक)*
यौ संसार कुबधि को भांडो, साध संगति नहीं भावै॥†
राम नाम की निन्दा ठाँणे, करम अकरम हि कुमावै॥
राम नाम बिन मुकति न पावै, फिर चौरासी जावै॥
साध संगत में कबहुँ न जावै, मूरख जनम गँमावै॥
जन मीराँ सतगुर के सरणैं, जीव परमपद पावै॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 240

प्रभु राख लई है

सन्तों की संगति और परम्परागत पूजा-पाठ के विरुद्ध आचरण करने के लिए मीरा बाई को लोक-निन्दा और राणा का विरोध सहना पड़ा, यहाँ तक कि राणा ने उन्हें विष देकर मारने की कोशिश की। इस पर वे उन्हें सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि मैं अपने सन्त-सतगुरु पर तन-मन वारती हूँ जिनकी कृपा द्वारा आपके विष ने मुझ पर कोई असर न किया और मैं इस परीक्षा में से इस प्रकार निकली जिस प्रकार सोना अग्नि में से शुद्ध होकर निकलता है। अब प्रेम का बाण मेरे हृदय को इतना गहरा बेध चुका है कि किसी प्रकार निकल नहीं सकता:

---

* **कुण**=कौन।

† **कुबधि**=कुबुद्धि।

राणाँजी तें जहर दियो मैं जाणी। (टेक)
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बाराबांणी॥
लोकलाज कुलकाण जगत की, दी बहाय ज्यूँ पांणी॥
अपने कुल का परदा कर लो, मैं अबला बौरांणी॥
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकांणी॥
सब संतन पर तन मन वारों, चरण कमल लपटांणी॥
मीराँ को प्रभु राख लई है, दासी अपनी जाणी॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 247

बाने का बिरद

जब भी परमात्मा मनुष्य चोला धरकर गुरु के रूप में प्रकट होते हैं तो भक्त उन्हें याद दिलाते हैं कि जो बाना उन्होंने धारण किया है, उसका बिरद रखें और अपने भक्तों को तारें। परन्तु मीरा बाई कहती हैं कि मनुष्य को भी भक्ति का बाना पहनकर सच्चे भक्त का कर्तव्य निभाना चाहिए। यह मार्ग सरल नहीं है और न ही मुक्ति की प्राप्ति कोई खेल है। भक्त को अपना तन, मन और धन न्योछावर करके सभी कठिनाइयों को सहते हुए प्रेम और विश्वास के साथ आगे बढ़ना चाहिए। एक बार इस मार्ग पर पैर रखने के बाद पीछे नहीं हटना चाहिए:

बानारो बिड़द दुहेलो रे॥
बानो पहर कहा गरबायो, मुक्ति न होसी खेलो रे॥
बानारो प्रण प्रहलाद उबारयो, बैर पिता से झेल्यो रे॥
आगा धर पीछा मत ताको, दफतर नाहिं चढैलो रे॥*
मीराँजी ने भक्ति कमाई, जहर पियालो झेल्यो रे॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 346

* **आगा...ताको**=आगे पैर रखकर पीछे न देखो अर्थात् भक्ति के मार्ग में पैर रखने के बाद पीछे संसार की ओर ध्यान न दो; **दफतर...रे**=प्रभु के धाम में स्वीकार नहीं हो सकेगा।

सूरत देख लुभानी

इस छोटे पद में मीरा बाई अपने सतगुरु से दर्शन देने के लिए प्रार्थना करती हैं। सतगुरु के स्वरूप के एक बार के दर्शन से वे मोहित हो गयी हैं और दिन-रात उनके मिलाप के लिए तरस रही हैं:

मिलता जाज्यो हो गुरूज्ञानी, थाँरी सूरत देखि लुभानी॥
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूँ बिरह दिवानी॥
रात दिवस कल नाहिं परत है, जैसे मीन बिन पानी॥
दरस बिना मोहिं कछु न सुहावे, तलफ तलफ मर जानी॥
मीराँ तो चरनन की चेरी, सुन लीजे सुखदानी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 843

व्याकुल मीरा

इस पद में भी मीरा बाई अपनी विरह-वेदना प्रकट करते हुए कहती हैं कि वे प्रभु-मिलाप के लिए निरन्तर तड़प रही हैं और क्षण भर के लिए भी उन्हें चैन नहीं मिलता। दिन-रात वे अपने प्रियतम का पंथ निहार रही हैं और अपनी सुध-बुध खो बैठी हैं:

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर जागी री। (टेक)
तलफत तलफत कल न परत है, बिरह-बाण उर लागी री।
निस दिन पंथ निहारूं पीव को, पलक न पल भरि लागी री॥
पीव पीव मैं रटूं रात दिन, दूजी सुधि बुधि भागी री।
बिरह-भुवंग मेरो डसो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री॥*
मेरी आरति मेटि गुसाँई, आइ मिलौ मोहिं सागी री।†
मीराँ ब्याकुल अति अकुलाणी, पिय की उमंग अति लागी री॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 267

---

* **बिरह-भुवंग**=विरह रूपी सर्प।
† **सागी**=जल्दी।

प्रभु का वरण

मनुष्य-जन्म का अवसर पाकर जीव को चाहिए कि वह परमात्मा का मिलाप प्राप्त करे। अपने अन्य पदों की भाँति इस गुजराती पद में भी मीरा बाई परमात्मा की प्राप्ति को आत्मा का विवाह कहती हैं। पद का भाव इस प्रकार है: हे सखी, उस अजन्मे, अनादि वर का वरण कर जो कभी जन्म-मरण में नहीं आता; किसी दूसरे के साथ प्रीति न कर। मनुष्य-जन्म का तुझे अवसर मिला है, यह मूल्यवान् सम्पत्ति परमात्मा ने तुझे दी है। अब देर क्यों करती है? इस अवसर का लाभ उठा। कोई वेदों की दुहाई देता है, कोई तर्क-वितर्क करता है तो कोई निन्दा-स्तुति। हे सखी, इन सब व्यर्थ की बातों को लेकर तू सुखी और दुःखी क्यों होती है, तू भक्ति और प्रेम रूपी वह बँगड़ी* पहन जो कभी टूटती नहीं और जो न कभी दिखायी ही देती है। तू वह सुहाग की चुनरी ओढ़ जो कभी मैली नहीं होती और न कभी फटती है और जिसका रंग कभी उड़ता नहीं। तू उस लोक को अपना ससुराल बना जहाँ सुख तथा दुःख की धूप-छाँह नहीं है और जहाँ न काम, क्रोध, तृष्णा आदि की अग्नि है और न ही संसार के क्लेशों का ताप। तू नाम रूपी नौका में बैठकर सहज ही भवसागर को तर ले और जब तक इस संसार में है निश्चिन्त और निर्भय होकर रह। मीरा बाई कहती हैं, हे प्रभु, मैं तेरी बलिहारी जाती हूँ, मुझे एकमात्र तेरी ही आस है, तू कृपा कर और मेरे मनुष्य-जन्म को सार्थक कर दे:

अणजायो वर वरिये रे हो बेनी मारे॥
　　बीजा थी न प्रीति करिये रे॥
मनुष्य जनम टाणुं मल्युं, सहियर मोघुं नाणुं॥
　　वार हवे शानी करिये रे हो॥
कोई वेद वाणी बोले, कोई फावे तेम छोले॥
　　हरष शोक शाने करिये रे हो॥

---

* **बँगड़ी**=एक प्रकार की मोटी चूड़ी, चूड़ा।

भाँगे नहीं फूटे नहीं, बुड़ीजे देखाय नहीं॥
बँगडियो तो एवी धरिये रे हो॥
फाटे नहीं टूटे नहीं, रंग जेनो जाय नहीं॥
चुँदड़ियो तो एवी धरिये रे हो॥
सुख दुःख टाढ़ तड़को, न थी ज्याँ आगनो भड़को॥
सासरियाँ तो एवा करिये रे हो॥
हरि नाम नी होड़ी करिये, स्हेजे भवसागर तरिये॥
भर दरिये मोजां करिये रे हो॥
मीराँ के हुँ बलिहारी, आशा म्हने एक तारी॥
जनम सफल करिये रे हो॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 10

बिछुरत प्राण तजे

ऊदा बाई को सम्बोधित करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि केवल प्रेम-प्रेम दोहराते रहने से कुछ नहीं होता। प्रेम अन्तर की वह भावना है जिससे प्रेरित होकर प्रेमी अपना तन, मन, धन और सर्वस्व ही प्रीतम पर वार देता है। मछली, मृग और पतंगे की आत्माहुति का उदाहरण देते हुए वे कहती हैं कि उनकी ऐसी ही प्रीति अपने गुरु से लग गयी है और उनका चित्त उन्हीं के चरणों में लीन रहता है:

अरी एरी ऊदाँ लागी का नाम न लेय। (टेर)
जल से प्रीति करी मछली ने, बिछुरत प्रांण तजे॥
मृगाँ की प्रीति लगी नादाँ से, सनमुख सेल सहे॥
दीपक से प्रीत लगी पतंग की, वार फेर जिय दे॥
मीराँ की प्रीति लगी है संतो से, गुरु चरणाँ चित दे॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 10

भक्ति की दृढ़ता

यह पद मीरा बाई और ऊदा बाई के बीच वार्तालाप के रूप में है। ऊदा बाई, मीरा बाई को सन्तों की संगति छोड़ने के लिए कहती हैं। वे उत्तर देती हैं कि सन्त और परमात्मा दोनों एक हैं, जैसे फूल और उसकी सुगन्ध। यह मार्ग मुझे मेरे सतगुरु ने दिया है, इसे मैंने अपना सिर देकर प्राप्त किया है, अब चाहे कोई लाँछन लगाये, हँसी उड़ाये या निन्दा करे, मैं इसे नहीं छोड़ूँगी:

म्हे तो करस्यांजी प्रीत लगाया संगत साधां री॥
हरिजन हरि तो एक हेरे फूल वास दो नांय।
अरस परस ऐसे मिले जैसे घिरत दूध के मांय॥
भाभी मीराँ सुनो कान दे समझो मन के मांय।
साधां रो संग छोड़ दीजो मती मांके लांछन लगाय॥*
यो मारग म्हाने नीठ मिल्यो छे सतगुरू दियो बताय।
माथा साटे धारण कीदो कूंकर छोडयो जाय॥†
जनम बड़ो घर पावियो, थूं आई बड़ा घर मांय।
मूंढ मुलकरी काई जाणे थूं राजरीत ठुकराय॥‡
भगति बिना ठुकराई झूठी मांने नहीं सुहाय।
राजपाट सब धरिया रेसी जलसी जंगल मांय॥
लोग दुनियां थारी निन्दा करे छे सारा सेर के मांय।§
कुटम कबीला थारी हांसी ठाने हिल मिल निन्दा गाय॥
निन्दा म्हारी भले ही करजो लेसी पलो बिछाय।¶
बिना साबुन और पाणी के सबहि मेल धुल जाय॥
धन धन है मीराँ बड़भागण हरिसूं हेत लगाय।
बार बार म्हे करूँ बीनती दुष्ट रया पछताय॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 294

---

* **मांके**=हमारे।

† **माथा साटे**=बदले।

‡ **मूंढ**=मूर्ख; **मुलकरी**=देश की।

§ **सेर**=शहर।

¶ **लेसी...बिछाय**=प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँगी।

नाम-रस

इस पद में मीरा बाई जिज्ञासुओं को प्रेरणा देती हैं कि वे कुसंगति को त्यागकर सत्संग में जायें। सन्तों की संगति में नाम के रस का पान करें, काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह को त्यागकर प्रभु के रंग में रँग जायें:

राम नाम रस पीजे मनुआ, राम नाम रस पीजे। (टेक)
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजे॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ चित्त से बहाय दीजे॥
मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, ताहि के रँग में भीजे॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 266

शब्द सरोवर धँसी

भक्ति के मार्ग को अन्य सन्तों की भाँति मीरा बाई भी तलवार की धार कहती हैं। इस मार्ग को अपनानेवाले की लोग हँसी उड़ाते हैं, उसे विक्षिप्त और कुल का कलंक कहते हैं, परन्तु वे कहती हैं कि मैं तो अपने प्रियतम के नाम में रम गयी हूँ और भक्ति के द्वारा शब्द के सरोवर में समा गयी हूँ:

मेरे मन राम नामा बसी। (टेक)
तेरे कारण स्यामसुन्दर, सकल लोगां हँसी॥
कोई कहे मीरां भई बौरी, कोई कहे कुल नसी॥
कोई कहे मीरां दीप आग री, नाम पिया सूं रसी॥
खांडे धार भक्ति की न्यारी, काटिहै जम की फँसी॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सब्द सरोवर धँसी॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 216

नाम मन बसिया

मीरा बाई इस पद में कहती हैं कि प्रभु का नाम मेरे मन में बस गया है और मैं नाम के अभ्यास द्वारा अपने प्रियतम को रिझाऊँगी। हे सखी, मैं विरह रूपी पिंजरे की बाधा को हटाकर, दुर्मति को दूर करके तथा मन को मारकर सतगुरु से मिलाप प्राप्त करूँगी:

राम नाम मेरे मन बसियो रसियो राम रिझाऊँ ए माय।
मैं मंदभागण करम अभागण कीरत कैसे गाऊँ ए माय॥
बिरह पिंजर की बाड़ सखी री उठ कर जी हुलसाऊँ ए माय।
मन कूँ मार सजूँ सतगुरू सूँ दुरमत दूर गमाऊँ ए माय॥*
डंको नाम, सुरत की डोरी कड़ियाँ प्रेम, चढ़ाऊँ ए माय।
प्रेम को ढोल बण्यो अतिभारी मगन होय गुण गाऊँ ए माय॥
तन करूँ ताल, मन करूँ ढफली सोती सुरति जगाऊँ ए माय।
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे तो प्रीतम पद पाऊँ ए माय॥
मो अबला पर किरपा करज्यो गुण गोविन्द का गाऊँ ए माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर रज चरणन की पाऊँ ए माय॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 869

बैरन नींद

अभ्यासी के मार्ग में निद्रा एक बहुत बड़ी बाधा है। भजन के समय यह उसे सुस्त बनाती है और मनुष्य-जन्म के अनमोल समय को बेसुधि में नष्ट कर देती है। परमार्थ की दृष्टि से भी जीव युगों-युगों से परमात्मा की ओर से सोया हुआ है और दुनिया की मोह-माया के प्रति सचेत है। मीरा बाई इस पद में निद्रा की बाधा को दूर करने की भावना को व्यक्त करते हुए कहती हैं, हे निद्रा, तू मेरी बैरिन है, मैं तुझे हाट में बेचूँगी। सोते-सोते मेरे असंख्य

* **सजूँ**=मिलूँ।

युग बीत गये हैं। तू उस घर में जाकर अपना डेरा लगा जहाँ प्रभु का कोई भक्त न हो; मैंने तो अपने प्रियतम को नयनों में बसा रखा है, तेरे लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है:

नीदड़ली थाने बेच द्यूं जे थारो गायक होय॥
नीदड़ली बेरणा बेच द्यूं॥ टेर
पीसै सेर टकै पंसेरी, रिपिया री मण दोय॥
हेला दे-दे गायक तैड़ूं, घालूँ, उधारी तोय॥*
बीच बजार बिछायत माड़ूं, ऊँची खोलूं हाट॥
दे दे झोला बधती तोलूं, बधता राखूं बाट॥
सोवत सोवत सब दिन बीत्या, दियो जमारो खोय॥
नितरा बैरण तां घर जावो, राम भगत नाँ होय॥†
आयो साजन मुड़ गयो रे, मैं बैरण रही सोय॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, राखी नैण समोय॥

मीराँबाई का जीवनवृत्त एवं काव्य, पृ. 103

कंगन

प्रभु-प्रेम में लीन आत्मा सांसारिक वासनाओं तथा धन्धों में आसक्त नहीं होती। उसके तन, मन, धन और प्राण केवल प्रियतम हैं। इसी भाव को मीरा बाई एक कन्या के विवाह के रूपक द्वारा प्रस्तुत करती हैं। आत्मा रूपी वधू कहती है कि मैं किसी दूसरे का कंगन‡ नहीं पहनूँगी। मेरा तो मेरे प्रिय प्रभु के साथ परिणय हो गया है और मैं उन्हीं का कंगन पहनती हूँ। मेरे सतगुरु ने ज्ञान का गुड़ मुझे खिलाया है और प्रेम की वरमाला पहनायी है। पवन के

* **हेला**=पुकार; **गायक तैड़ूं**=ग्राहक बुलाऊँ; **उधारी**=उधार दे दूँ।

† **नितरा**=नित्य की।

‡ **कंगन**=गुजराती में इसे मींढल कहते हैं, यह धागे में मेवे को पिरोकर बनाया जाता है तथा विवाह के समय दुलहन के हाथ में बाँधा जाता है, कंकण।

समान चंचल मन को बाँधकर गुरु ने उससे विवाह मण्डप रचा है और तन का तोरण बनाया है। सतगुरु ने मेरे हाथों में सत्य का कंकण बाँधा है जिसे कोई भी खोल नहीं सकता। धर्म के मार्ग पर चलनेवाले बाराती (साध-संगत) इस सम्बन्ध से प्रसन्न हैं। मैंने ऐसा पति पाया है जो अजर और अमर है। मीरा बाई कहती हैं कि मेरा कंगन प्रभु का उपहार है और प्रार्थना करती हैं, हे प्रभु, मुझे सन्त-चरण का वास प्रदान करो:

नहीं बांधु मींढल, बीजाना मींढल नहीं बांधु।
हुं तो परणी मारा पियुजी नी साथ॥
ज्ञान ना गोल गुरूए मुख मांहि दीधो, प्रेम नी घाली वरमाल॥
मन पवन नो गुरुए मांडवो बंधाव्यो, तनड़ा ना बांध्या छे तोरण॥
सत्य नां कंकण मारा गुरुजीए बांध्यां, एनो कोण छोडावनार॥
धर्म ना धोरी मारां प्रसन्न जानैया, हुँ तो अमर पामी भरथार॥
बाई मीराँ ने मींडल छे श्री रामनां, देजो तमे साधु चरणे वास॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 405

इस काया में

इस गुजराती पद में मनुष्य के शरीर में निरन्तर गूँजनेवाले शब्द तथा अन्दर के रूहानी मण्डलों के दृश्यों का संकेत करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि हे मनुष्य, तेरे शरीर में निरन्तर घण्टे की ध्वनि गूँज रही है। तेरी इस दस द्वार वाली काया में (दसवें द्वार अथवा तीसरे तिल में) शब्द की धुन हो रही है। इस शरीर के अन्दर ही विभिन्न रूहानी मण्डल, बाग़, बगीचे आदि हैं जिनका रस आत्मा रूपी भ्रमर ग्रहण कर सकता है। इस काया में निरन्तर जोत जल रही है जिसके उज्ज्वल प्रकाश के बिम्ब में से धुन गूँज रही है। वे कहती हैं कि केवल सन्त ही उस अमरपुर का वृत्तान्त जानते हैं जो प्रभु का धाम है:

वागे छे रे वागे छे तारी काया, मां घड़ीयाल वागे छे ॥*
आरे काया ना दश दरवाजा, नित नी नौबत गाजे छे ॥
आरे काया मां बाग बगीचा, भमरो सुगन्ध मांगे छे ॥
आरे काया मां जोत जले छे, तेजना बींबकार वागे छे ॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, सन्तो अमरापुर म्हाले छे ॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 750

वेग पधारो

विरह और प्रेम के इस शब्द में मीरा बाई कहती हैं कि हे प्रियतम, तेरी याद में और तेरे मिलाप के लिए मैं निरन्तर तड़प रही हूँ। कृपा कर मुझे दर्शन दे। मैं तेरी शरण में आयी हूँ, मुझे अपना ले। इस बार यदि तू मिल जाये तो तुझे एक पल के लिए भी अपने से बिछुड़ने न दूँगी। जैसे कोई व्यक्ति बहुमूल्य रत्न पा लेने पर उसे हाथ में बन्द कर लेता है, उसी प्रकार मैं तुझे अपने से दूर न होने दूँगी। अपने हृदय रूपी मन्दिर में तुझे मेहमान की तरह रखूँगी:

ओल्यूँ थारी आवे हा मिलवा की साजनिया ॥†
बिछरन दूँगी पाय पलक में, राखूँ हथमनिया।
आप महाराज को बिरद लजेलो, सुणजो साजनिया ॥
याद करूँ जब वेग पधारो, राखूँ पावनिया।
किरपा कीजो दर्शन दीजो, शरणे काजनिया ॥
भरयाँ समँद में बही जात हूँ, कोई न राखनिया।
मीराँ के प्रभु हित कर लीजो, गिरधर से धनिया ॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 328

---

* **घड़ीयाल**=घण्टा।

† **ओल्यूँ**=तीव्र याद जो निरन्तर आती रहती है।

बैरागिन

मीरा बाई भेषधारी संन्यासियों और बैरागियों के मार्ग का खण्डन करते हुए कहती हैं कि सच्चा वैराग्य अन्तर का है, बाहरी भेष अथवा दिखावे का नहीं। वे कहती हैं कि मैं प्रभु की बैरागिन बनूँगी और उसी भेष अथवा करनी को अपनाऊँगी जो मेरे साहिब को पसन्द हो। बाहरी त्याग के स्थान पर मैं अन्तर में शील, सन्तोष आदि गुणों को धारण करूँगी और सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि को समता-भाव से अपनाऊँगी। गेरुए वस्त्रों के स्थान पर मैं अपने तन-मन रूपी वस्त्र को गुरु के ज्ञान में रँगूँगी। कानों में योगियों वाली मुद्रा पहनने के स्थान पर मन को अनुशासन रूपी मुद्रा पहनाऊँगी। ऐसी बैरागिन बनकर मैं सन्तों के साथ रहूँगी:

बाला मैं बैरागण हूँगी।
जिन भेषाँ म्हारो साहिब रीझे, सोही भेष धरूँगी॥
सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी।
जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी॥
गुरु के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी।
प्रेम-प्रीत सूँ हरिगुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी॥
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साधाँ सँग रहूँगी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 381

मन माने जब तार

मीरा बाई कहती हैं कि संसार-सागर को वे अपने आप पार नहीं कर सकतीं। वे योग, यज्ञ, जप, तप आदि क्रियाएँ नहीं करतीं, उन्होंने तो नाम रूपी सार वस्तु को अपना लिया है। वे प्रभु से प्रार्थना करती हैं कि उन्हें इस संसार-

सागर से पार करें पर साथ ही शरण की भावना सहित कहती हैं कि प्रभु उन्हें तभी तारें जब और जैसी उनकी मौज हो:

मन माने जब तार प्रभुजी॥
नदिया गहरी नाव पुरानी। किस विध उतरूँ पार॥
वेद पुरान बखानी महिमा। लगे न गुण को पार॥
योग याग जप तप नहीं जानूं। नाम निरन्तर सार॥
बाट तकत हौं कबकी ठाड़ी। त्रिभुवन पालन हार॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। चरण कमल बलिहार॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 328

आज प्रभु मेरे घर रे

इस सरल पद में मीरा बाई प्रियतम के मिलाप के आनन्द का वर्णन वर्षा ऋतु में प्रकृति की छटा द्वारा करती हैं। वे कहती हैं, अब मेह चाहे कितना ही बरसता रहे मुझे चिन्ता नहीं क्योंकि आज मेरे प्रियतम मेरे पास हैं। मेघ घिर आये हैं और ग्रीष्म ऋतु से सूखे हुए सरोवर भर गये हैं। इसी प्रकार बहुत दिनों के विरह ताप के बाद मैंने आज प्रियतम का मिलाप पाया है:

मेहा बरसवो करे रे, आज तो रमैयो मेरे घरे रे।
नान्हीं नान्हीं बूँद मेघ घन बरसे, सूखे सरवर भरे रे॥
बहुत दिनाँ पे प्रीतम पायो, बिछुड़न को मोहिं डर रे।
मीराँ कहे अति नेह जुड़ायो, मैं लियो पुरबलो वर रे॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 441

सोने में सुहागा

इस पद में मीरा बाई कहती हैं कि वे अपने सन्त-सतगुरु से इस प्रकार एक हो गयी हैं जैसे सोने में सुहागा होता है। अब लोग चाहे उनकी कितनी ही निन्दा करें, वे अपने मार्ग से नहीं हटेंगी। वे युगों-युगों से अज्ञान रूपी अन्धकार में सोयी पड़ीं थीं, सतगुरु ने आकर उन्हें चिताया। अब उनके जन्म-मरण अथवा आवागमन का भय दूर हो गया है:

कोई कछू कहे मन लागा रे॥
मीराँ तो संतों में मिल गयी, ज्यों सोने में सुहागा रे॥
मीराँ जी तो ऐसी मिल गयी, ज्यों गुदड़ी में धागा रे॥
लोग कहे मीराँ बिगड़ चुकी है, वांका भरम वांने खागा रे॥*
हंस की चाल हंस ही जाने, क्या जानेगा कागा रे॥
मीराँ तो सूती श्याम भवन में, सतगुरू आय जगागा रे॥
मानुष जन्म ले हरि नहीं गायो, काल उसको खागा रे॥
सतसंगत और राम भजन कर, जन्म-मरण भौ भागा रे॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जन्म-मरण भन भागा॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 848

तोही से लागो नेह

इस पद में मीरा बाई प्रियतम से प्रार्थना करती हैं कि उनका प्रेम तोड़ें नहीं बल्कि उसमें निरन्तर वृद्धि करते रहें। अगली पंक्तियों में वे प्रेम, विरह तथा सांसारिक प्रेम और प्रभु-प्रेम में अन्तर का वर्णन करते हुए सतगुरु के मिलाप के आनन्द पर पद को समाप्त करती हैं:

रमैया मेरे अब तोही सूं लागो नेह।
लागी प्रीत जिन तोड़े रे वाला, अधिकौ कीजै नेह॥

* **वांका**=उनका; **वांने**=उनको।

जौ हूं ऐसी जाणती रे वाला, प्रीत कियाँ दुःख होय।
नगर ढंढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय॥
खीर न खाजै आकरी रे, मुरख न कीजै मिंत।*
खिण ताता खिण सीलवा रे, खिण बैरी खिण मिंत॥†
प्रीत करे ते बावरा रे, करि तोड़े ते कूर।‡
प्रीत निभावण दल के थंभण, ते कोइ बिरला सूर॥§
तुम गज गिरी को चूंतरो रे, हम बालू की भीत।
अब तो म्यां कैसे बणे रे, पूरब जनम की प्रीत॥¶
एके थाणे रोपीया रे एक आंबा एक बूंल।
वांको रस नीकौ लगे रे वाको लागै सूल॥
ज्यूं डूंगर का व्हाला रे, यूं ओछा तणा सनेह।**
बहता बहे जी उतावला रे, वे तो झटक बतावे छेह॥††
आयो सावन भादवो रे वाला, बोलन लागा मोर।
मीराँ कूँ हरिजन मिल्या रे, लेगिया पवन झकोर॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 444

जब भई ख़ाक बराबर

इस पद में मीरा बाई अपने प्रियतम प्रभु के मिलाप का वर्णन करते हुए कहती हैं कि जब तक उनमें मान और अभिमान की भावना थी प्रियतम ने उनसे बात तक न की; परन्तु जब अपने अहं को ख़ाक में मिलाकर वे दीन

---

* **आकरी**=बहुत गरम; **मिंत**=मित्र।
† **खिण ताता**=क्षण में गरम; **खिण सीलवा**=क्षण में शीतल।
‡ **कूर**=क्रूर, निर्दयी।
§ **थंभण**=पक्का चबूतरा।
¶ **म्यां**=तुममें और मुझमें।
** **डूंगर**=पहाड़ी नाला; **यूं...सनेह**=ओछों का अर्थात् संसारियों का स्नेह।
†† **छेह**=एकाएक सूख जाता है।

बनीं तो प्रभु ने अन्तर के पट खोल दिये, वियोग की दूरी का अन्त कर दिया और मिलाप का दिव्य आनन्द प्रदान किया:

राम रंग लागो, मेरे दिल को धोको भागो॥
जब थी बन्दी मान गुमानी, पीजी मुखउ न बोलो।
अब भई बन्दी खाक बराबर, साहिब अन्तर खोलो॥
पीजी बोलो, अन्तर खोलो, सेजड़ियां सुख दीनो।
मैं अपने प्रीतम संग राजी, प्रेम पियालो पीनो॥
लोक लाज कुल की मरजादा, तोड़ दियो सोइ धागो।
हरीजनाँ ने हरी मिले, ज्यूँ सोनो मिल्यो सुहागो॥
साँचे से मेरा साहिब राजी, झूठे से मन भागो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारो जागो॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 380-81

प्रियतम का समाचार

अपनी विरह-व्यथा व्यक्त करते हुए मीरा बाई कहती हैं कि मैं अपने प्रियतम का समाचार किससे पूछूँ? प्रियतम का निवास संसार रूपी सागर के पार है, रास्ते में अनेक दुर्गम घाटियाँ, पहाड़ आदि हैं, मैं उनका सन्देश कैसे प्राप्त करूँ? जिस प्रकार मोतियों के हार के टूटने पर एक-एक मोती बिखर जाता है, उसी प्रकार मेरे नेत्रों से अश्रु बह रहे हैं और मेरे वस्त्र भीग रहे हैं। अगर मैं सोती हूँ तो नींद नहीं आती और जागती हूँ तो विरह सताता है। वे कहती हैं कि हे प्रभु, मैं तेरे गुणों का निरन्तर चिन्तन करती रहती हूँ और मेरा ध्यान तेरे चरणों में लगा है:

केने पूछां केने रे पूछां शामलियानां, समाचार बाई केने पूछां॥
आड़ारे डूंगर पहाड़ घणा रे वाला, वालीड़ा वसिया दरिया पार॥*

---

* **वालीड़ा**=प्रियतम।

नेंण झरेने कच्छवा भींजे रे व्हाला, हरखे ने टूटे माल्यो हार॥
सूंवां तो म्हांने निन्द्रा न आवे व्हाला, ऐ जागतड़ाना जंजाल॥
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरधर ना गुण, हरि चरणां में म्हारों ध्यान॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 207

नैना रस पीजै

प्रेम की मधुर भावनाओं से परिपूर्ण इस पद में मीरा बाई प्रियतम के दर्शन के आनन्द को प्रकट करती हैं। वे अपनी सहेलियों से कहती हैं कि ऐसे सुन्दर प्यारे प्रभु को अब अपने नेत्रों से दूर न जाने दें। उन पर तन, मन, धन और सर्वस्व न्योछावर करके उनके स्वरूप को अपने हृदय में धारण कर लें। आओ सखियो, हम उनके सुन्दर मुख को देखती ही रहें और अपने नयनों से उनके सौन्दर्य का पान करती रहें। जिस प्रकार भी हमारा प्रभु हमसे रीझे और प्रसन्न हो हम वही करें:

ऐसे प्रभु जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै, हिरदै धरि लीजै हो॥
आव सखी मुख देखिये, नैणां रस पीजै हो।
जिह जिह विधि रीझै हरि, सोई विधि कीजै हो।
सुन्दर श्याम सुहावणा, मुख देख्याँ जीजै हो।
मीराँ के प्रभु रामजी, बड़ भागण रीझै हो॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 469

वृक्ष की टेव

भक्त को चाहिए कि वह दयावान, उदार और सहिष्णु बने। संसार के सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि को निर्विकार भाव से सहन करे। मीरा बाई एक वृक्ष का उदाहरण लेकर भक्त को दृढ़ता और सहिष्णुता की प्रेरणा देती हैं:

मना तू तो वृक्षन की लत लेइ रे, थारो कांई करे डर भव रे॥
काटन वाला सूं बेर नहीं है, नहीं सींचन को सनेह रे।
जे कोई बावे कंकर पत्थर, उनको भी फल देइ रे॥
पवन चलावे इन्द्र झकोले, दुख सुख आपहि सहि रे.
सीत गहाम तो शिर पर सहिहै, पन्छिन को सुख देइ रे॥
आसन अचल मनसा नहीं डोले, तू ध्यान धणी को धेइ रे.
जे तूं चावे मोक्ष जीवको, तो नाम निरंजन लेइ रे॥
जैसे चात्रग घन को रटत है, वैसे चरण चित धर रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, भक्ति का रस लेइ रे॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 768

प्रभु हाथ बिकानी

मीरा बाई कहती हैं कि जिस दिन मुझे प्रभु ने दर्शन दिये, उसी दिन से उनका मनोहर स्वरूप मेरे अन्तर में समा गया है और अब मेरे नेत्रों को उन्हें ढूँढ़ते रहने की आदत सी पड़ गयी है। मैं अपने प्रियतम के बिना कैसे जीवित रहूँ, क्योंकि वे ही मेरे प्राणों के आधार हैं। मैं तो अपने प्रभु के दर्शन करके उनके हाथों बिक गयी हूँ। अब लोग भले ही कहें कि मीरा बिगड़ गयी है, मुझे तो सिर्फ़ प्रभु ही चाहिएँ:

नैणां मोरे बाण पड़ी, साँईं मोहि दरस दिखाई। (टेर)
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी॥
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवण मूर जड़ी॥

कबकी ठाढ़ी पंथ निहारूं, अपणे भवन खड़ी॥
मीराँ प्रभु के हात बिकानी, लोग कहे बिगड़ी॥

मीरां बृहत्पदावली, पृ. 127

व्यर्थ के धन्धे

मीरा बाई की यह गुजराती रचना मनुष्य को चेतावनी देती है कि अपने अनमोल जन्म को सांसारिक धन्धों में खोकर न गँवा दे। मनुष्य अपना पूरा जीवन संसार की मोह-माया में बिताकर अन्त समय में पूजा-पाठ, दान-पुण्य आदि करके मुक्ति पाना चाहता है। मीरा बाई कहती हैं कि यह सब केवल अपने आपको धोखा देना है। घर में आग लगने पर कुआँ खोदने जाना या घर में चोरी हो जाने के बाद दीपक जलाना अर्थहीन है। जब सरोवर में पानी सूख जाये तभी बाँध लगाया जा सकता है, जब पानी सब बह जाये तो बाँध लगाने का क्या फ़ायदा? लोग मृत्यु के समय तुलसी मँगवाते हैं, तिलक लगाते हैं, दीया जलाते हैं और मरनेवाले को इष्टदेव का नाम सुनाते हैं। मीरा बाई कहती हैं, हे अज्ञानी लोगो, ये सब व्यर्थ के धन्धे हैं। परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयास समय रहते करना चाहिए:

पहेली प्रभु शुं प्रीत न बांधी, अन्ते संत मनावो रे॥
घर लाग्युं ने कूप खोदायो, केम अग्नि होलवाशे रे।
चोरो तो धन हरी गया पछे, दीपकथी शुं थाशे रे॥
बालपणुं रमवामां खोयुं, जोबन जुवतीनी जोडे रे।
वृद्ध थये छैयां छोकरां व्हालां, मरतां मागे मुक्ति मोटे रे॥
सूके सरोवरे पाल न बांधी, वारी गयुं ज्यारे वहीने।
शुं करवा पछी पाल बांधो छो, साचीशी समजण सहीने रे॥
तुलसी मंगावोने तीलक बनावो, साहेब नाम सुणावो रे।
मीराँ कहे अज्ञानी लोको, फोकट फंद करवो रे॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 780

दीवानी मीरा

अपने प्रेम की तन्मयता और आत्मिक आनन्द में लीन हो मीरा बाई कहती हैं कि सांसारिक दृष्टि से वे दीवानी हो गयी हैं और उनके पास इसका कोई इलाज नहीं है। अपने शरीर रूपी मन्दिर में शब्द के नाद में लीन हो,वे आन्तरिक मण्डलों में गमन करती हैं और उन्हें अब अपना शरीर पराया प्रतीत होता है। जिस प्रकार मिट्टी के कलश के टूटने पर पानी बिखर जाता है, उसी प्रकार उनकी आत्मा शरीर के बन्धनों से मुक्त हो अन्तर के मण्डलों में गमन करती है। अन्दर वे सतगुरु के चरणों में पहुँच गयी हैं और सच्चे अर्थों में रानी बन गयी हैं:

मीराँ हो गई दीवानी, मैं कैसी करूं रे॥
अपने मंदिर में ढोलक बजावे,
ढोलक के नाद में राम नाम गावे॥
फूट गया कलसा बिखर गया पाणी,
उड़ गया हंसा ये काया बिरानी॥
हाट बजार में मीराँ की बानी,
सद्गुरू क़े चरणों में मीरांबाई राणी॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 847-48

ज्योति में ज्योति मिली

विरह की पीड़ा तथा प्रियतम के साथ मिलाप करने की व्याकुलता प्रेम की ज्वाला को और प्रज्वलित करती है। इस प्रकार विरह, सच्चे प्रेम को और दृढ़ बनाता है तथा प्रभु-मिलाप के मार्ग में सीढ़ी का काम करता है। इन दो पदों में मीरा बाई प्रियतम से मिलाप के आनन्द का भावपूर्ण वर्णन करती हैं। वे कहती हैं कि मैं अपने प्रिय प्रभु में समाकर उसी का ही रूप हो गयी हूँ, मेरी ज्योति उस महान् प्रकाश में समाकर प्रकाश का ही रूप हो गयी है,

मेरी आत्मा रूपी बूँद परमात्मा रूपी समुद्र में समाकर समुद्र हो गयी है तथा अपने प्रियतम में लीन होने की मेरी अनादि आकाक्षा पूर्ण हो गयी है:

सहेलियाँ साजन घर आया हो॥
बहोत दिनाँ की जोवती निरहिणी पिव पाया हो॥
रतन करूँ नेवछावरी ले आरति साजूँ हो।
पिव का दिया सनेसड़ा ताहि बहोत निवाजूँ हो॥*
पाँच सखी इकठी भई मिलि मंगल गावै हो।
पिय की रली बधावणा आणंद अंग न मावै हो॥†
हरि सागर सूँ नेहरो नैणां बँध्या सनेह हो।
मीराँ सखी के आँगणै दूधाँ बूठा मेह हो॥‡

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 512

आई देखन मनमोहन कूँ मोरे मनमों
छबि छाय रही॥
मुख पर को अँचलो दूर कियो तब,
ज्योत में ज्योत समाय रही॥
सोच करे अब होत कहा है,
प्रेम के फंदे में आय रही॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
बुँदमों बूँद समाय रही॥

मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 513-14

* **सनेसड़ा**=सन्देश; **निवाजूँ**=आदर करती हूँ।
† प्रियतम से मिलाप की प्रसन्नता में सखियाँ आनन्द के साथ बधाई के मंगल-गीत गा रही हैं।
‡ आँगन में दूध की वर्षा हो रही है अर्थात् सब मनोकामनाएँ पूर्ण हो रही हैं।

सन्दर्भ-सूची

जीवन

1. मीरां बृहत्पदावली, भाग 1, भूमिका, पृ. 5
2. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 779
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 205
5. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 384
6. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 196
7. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 753-54
8. मीरां बृहत्पदावली, पृ. 201
9. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 281
10. मीरां बृहत्पदावली, पृ. 207
11. मीराबाई की शब्दावली, पृ. 31,
12. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 377
13. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 479
14. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 281
15. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 292
16. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 295
17. कबीर साखी-संग्रह, भाग 1, पृ. 22
18. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 265
19. मीरां बृहत्पदावली, पृ. 326
20. मीराँबाई का जीवनवृत्त एवं काव्य, पृ. 120
21. कबीर साखी-संग्रह, भाग 1, पृ. 3, 1
22. दादू दयाल की बानी, भाग 1, पृ. 6
23. आदि ग्रन्थ, पृ. 442
24. आदि ग्रन्थ, पृ. 864
25. चरनदास जी की बानी, भाग 1, पृ. 6
26. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 847
27. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 483
28. मीरां बृहत्पदावली, पृ. 247
29. मीराँबाई का जीवनवृत्त एवं काव्य, पृ. 129
30. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 279
31. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 282
32. हरमन ग़ैत्ज़, मीरा बाई, पृ. 21
33. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 279
34. चौरासी वैष्णवों की वार्ता
35. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 768
36. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 760
37. हरमन ग़ैत्ज़, मीरा बाई, पृ. 28
38. हरमन ग़ैत्ज़, मीरा बाई, पृ. 31
39. मीराँ व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 500
40. हरमन ग़ैत्ज़, मीरा बाई, पृ. 40

मीरा का सन्देश

1. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 753
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 658
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 219
4. कबीर ग्रन्थावली, पद 348, पृ. 465
5. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 281
6. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 407
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 176
8. नामदेव की हिन्दी पदावली, पद 124
9. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 846
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 769-70
11. दरिया साहिब की बानी, पृ. 44
12. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 280
13. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 402
14. दादू दयाल की बानी, भाग 1, पृ. 140
15. कबीर ग्रन्थावली, पृ. 80
16. कुल्लियात बुल्लेशाह, पृ. 369
17. आदि ग्रन्थ, पृ. 1256
18. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 523
19. आदि ग्रन्थ, पृ. 754
20. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 759
21. मीरां बृहत्पदावली, पृ. 139
22. मीरां बृहत्पदावली, पृ. 239
23. आदि ग्रन्थ, पृ. 722
24. आदि ग्रन्थ, पृ. 946
25. कबीर साखी-संग्रह, भाग 1, पृ. 46
26. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 873
27. मीराबाई की शब्दावली, पृ. 24
28. कबीर साहिब की ज्ञान-गुदड़ी, रेखते और झूलने, पृ. 32
29. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 842
30. कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 2, पृ. 58
31. मीराबाई की शब्दावली, पृ. 9
32. कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 2, पृ. 86
33. मीराँबाई का जीवनवृत्त एवं काव्य, पृ. 131
34. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 399
35. पलटू साहिब की बानी, भाग 1, पृ. 71-72
36. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 750
37. कबीर साखी-संग्रह, भाग 2, पृ. 92
38. आदि ग्रन्थ, पृ. 595
39. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 875
40. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 196
41. मीरां बृहत्पदावली, पृ. 246
42. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 748
43. आदि ग्रन्थ, पृ. 404
44. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 841
45. आदि ग्रन्थ, पृ. 221

46. आदि ग्रन्थ, पृ. 1179
47. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 167
48. सारबचन संग्रह, 27:6:1
49. सारबचन संग्रह, 37:21:1
50. कबीर साखी-संग्रह, भाग 2, पृ. 148
51. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 750
52. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 768
53. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 759
54. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 772
55. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 386
56. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 756
57. पलटू साहिब की बानी, भाग 1, पृ. 71
58. कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 59
59. कबीर साखी-संग्रह, भाग 2, पृ. 112
60. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 767-68
61. मीरां बृहत्पदावली, पृ. 161
62. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 380
63. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 441
64. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 515-16
65. मीरां बृहत्पदावली, पृ. 127
66. मीराँ व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. 271
67. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 444
68. मीराँ सुधा-सिन्धु, पृ. 379

कुछ संकलित पद

1. पाथ वे टु गॉड इन हिन्दी लिट्रेचर, पृ. 194

सन्दर्भ-ग्रन्थ

English

Goetz Hermann, Mira Bai—Her Life and Times, (edited), K. M. Munshi, R. R. Diwakar, Bombay : Bhartiya Vidya Bhavan, 1966

Ranade R. D., Pathway to God in Hindi Literature, Sangli : Adhyatama vidya mandir, 1954.

हिन्दी

कबीर ग्रन्थावली, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी (टीकाकार), लखनऊ: प्रकाशन केन्द्र, आठवाँ संशोधित संस्करण

कबीर ग्रन्थावली, डॉ. श्यामसुन्दरदास (सम्पादक), काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, चौदहवाँ संस्करण, 1977

कबीर साखी-संग्रह, भाग 1-2, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, ग्यारहवाँ संस्करण, 2001

कबीर साहिब की ज्ञान-गुदड़ी, रेखते और झूलने, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, बारहवाँ संस्करण, 1998

कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1-2, इलाहाबाद:बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, चौदहवाँ संस्करण, 2003

चरनदास जी की बानी, भाग 1, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, आठवाँ संस्करण, 1985

दरिया साहब (मारवाड़), इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, सातवीं बार, 2003

दादू दयाल की बानी, भाग 1, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1984

नामदेव की हिन्दी पदावली, भगीरथ मिश्र (सं.), पूना विश्वविद्यालय, पहली बार, 1964

पलटू साहिब की बानी, भाग 1, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, चौदहवाँ संस्करण, 2002

कुल्लियात बुल्लेशाह, फ़क़ीर मुहम्मद फ़क़ीर (सं.), लाहौर: पंजाबी अदबी अकादमी, 1970

मीराबाई का जीवन-वृत्त एवं काव्य, डॉ. कल्याण सिंह शेखावत, जोधपुर: हिन्दी साहित्य मन्दिर, पहला संस्करण, 1974

मीरां बृहत्पदावली, फतहसिंह (सं.), जोधपुर: राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, 1968

मीरा व्यक्तित्व और कृतित्व, पद्मावती, वाराणसी: हिन्दी प्रचारक संस्थान, प्रथम संस्करण, 1973

मीराँ सुधा-सिंधु, स्वामी आनन्द स्वरूप (सं.), भीलवाड़ा: श्री मीराँ प्रकाशन समिति, 1957

मीराबाई की शब्दावली, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, तेरहवीं बार, 2000

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1-2 (सन्था सैंचीआं), अमृतसर: शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1999

सारबचन संग्रह, स्वामी जी महाराज, राधास्वामी सत्संग ब्यास, चौदहवाँ संस्करण, 2004

शब्दानुक्रमणिका

अखंड वर ने वरी सहेली 102

अणजायो वर वरिये रे 131

अब क्यों करे रे मूर्ख मोडो रे 79

अब तो मेरा राम नाम दूसरा न कोई 111

अरी एरी ऊदाँ लागी का नाम न लेय 132

आई देखन मनमोहन कूँ 148

आज्यो आज्यो गोविन्दा म्हारे म्हैल 119

ओल्यूँ थारी आवे हा 138

ऐसे प्रभु जाण न दीजै हो 144

केने पूछां केने रे पूछां 143

कोई कछू कहे मन लागा रे 141

कोई कहियौ रे प्रभु आवन की 87

कोई कहे तेने कहेवा रे दईसे 91

गली तो चारों बंद हुई 75

गिरधर रूसणूं जी कोंण गुन्हां 86

गुरुये कहियुं करण मां 96

गोविन्द सूँ प्रीत करत 94

घेलां, अमे घेलां रे 93

छोड़ मत जाज्योजी महाराज 106

जाओ हरि निरमोहिआ 88

जागो म्हारा जगपतिराइ 121

जोगिया जी निसदिन जोऊं बाट 82

जोगिया सौं प्रीत कियाँ दुख होय 83

जोगी म्हाँने दरस दियाँ सुख होइ 83

तनक हरि चितवौ जी मोरी ओर 120

तुम पलक उघाड़ो दीनानाथ 76

तुम सुणौ दयाल म्हाँरी अरजी 74

तेरो कोई नहिं रोकणहार 109

दरस बिन दूखन लागे नैन 115

धोयँ न मैला होय 98

नहिं ऐसो जनम बारम्बार 107

नहीं बांधु मींढल, बीजाना मींढल नहीं 137

निन्दा म्हारी भलांई करोनै 104

नीदड़ली थाने बेच द्यूं 136

नींदड़ली नहिं आवै सारी रात 77

नैणां मोरे बाण पड़ी 145

नैनन बनज बसाऊं री 89

पहेली प्रभु शुं प्रीत न बांधी 146

पानी में मीन प्यासी 121

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो 117

प्यारे दर्शन दीजो आय 74

प्रभुजी थे कहाँ गया नेहड़ो लगाय 73
फागुन के दिन चार रे 123
बड़े घर ताली लागी रे 108
बन जाऊँ चरन की दासी रे 89
बरजी मैं काहू की नाँहिं रहूँ 84
बानारो बिड़द दुहेलो रे 129
बाला मैं बैरागण हूँगी 139
भज मन चरन कँवल अबिनासी 95
भर मारी रे बाना 127
मंदरिया में दीवडा बिनानुं 112
मन माने जब तार प्रभुजी 140
मन हमारा बाँध्यो माई 101
मनखा जनम पदारथ पायो 125
मना तू तो वृक्षन की लत लेइ रे 145
माई री मैं तो लीनो गोविंदो मोल 100
माधो बिना बसती उजार 95
मारा नाथनां नैणाँ ऊपर रे 124
मारे हरि भज्यानी छे वेला रे 122
मिलता जाज्यो हो गुरूज्ञानी 130
मीराँ बात नहीं जग छानी 81
मीराँ मन मानी सुरत सैल असमानी 117
मीराँ हो गई दीवानी 147
मुझे लगन लगी प्रभु पावन की 110
मेरे मन राम नामा बसी 134
मेरो मन राम हि राम रटै रे 77
मेहा बरसवो करे रे 140
मैं ओलग्यो रामरो 118
मैं तो गिरधर के घर जाऊँ 99
मैं तो तेरी सरण परी रे रामाँ 90
मैं तो राजी भई मेरे मन में 104
मोहे लागी लगन गुरु-चरनन की 90
म्हारा ओलगिया घर आया जी 84
म्हारा सतगुर बेगा आज्योजी 126
म्हारी सुध ज्यूँ जानो 114
म्हारे जन्म-मरण रा साथी 99
म्हे तो करस्यांजी प्रीत लगाया 133
रमइया बिनि यो जिवड़ौ दुख पावै 128
रमैया मेरे अब तोही सूं लागो नेह 141
राणाँजी तें जहर दियो मैं जाणी 129
राणाजी हूं अब न रहूँगी तोरी हटकी 87
राम नाम मेरे मन बसियो 135
राम नाम रस पीजे मनुआ 134
राम मिलण के काज सखी 130
राम रंग लागो, मेरे दिल को 143
राम रमकडुं जडियुं रे 80
री मेरे पार निकस गया 127
रेंटिया ने किस विध कातुं 103
लग रहना, लग रहना 85
लागी मोहिं राम खुमारी हो 110

वागे छे रे वागे छे तारी काया 138
सखी री मैं तो गिरधर के रँग राती 78
सत्संग नो रस चाख प्राणी 113
सहेलियाँ साजन घर आया हो 148
सुरता सवागण नार कुंवारी क्यूं रही 116
हमरे रौरे लागलि कैसे छूटै 97
हरि नाम से नेह लाग्यो रे 125
हरि मने पार उतार 73
हेरी मैं तो प्रेम दिवानी 106

हमारे प्रकाशन

स्वामी जी महाराज

1. सारबचन संग्रह
2. सारबचन वार्तिक

बाबा जैमल सिंह जी महाराज

1. परमार्थी पत्र, भाग 1

महाराज सावन सिंह जी

1. परमार्थी पत्र, भाग 2
2. शब्द की महिमा के शब्द
3. प्रभात का प्रकाश
4. गुरुमत सिद्धान्त, भाग 1, 2
5. सन्तमत सिद्धान्त
6. सन्तमत प्रकाश, भाग 1 से 5
7. परमार्थी साखियाँ
8. गुरुमत सार

महाराज जगत सिंह जी

1. आत्म-ज्ञान
2. रूहानी फूल

महाराज चरन सिंह जी

1. सन्तों की बानी
2. सन्तमत दर्शन
3. सन्तमत दर्शन, भाग 2 (दिव्य प्रकाश)
4. सन्तमत दर्शन, भाग 3 (प्रकाश की खोज)
5. सन्त-संवाद
6. सन्त-वचन (सन्त-संवाद, भाग 2)
7. सन्त-मार्ग
8. जीवत मरिए भवजल तरिए
9. पारस से पारस
10. सत्संग संग्रह, भाग 1 से 6

'पूर्व के सन्त-महात्मा' पुस्तक-माला के अन्तर्गत

1. सन्त नामदेव	जनक पुरी, वीरेन्द्र कुमार सेठी
2. सन्त कबीर	शान्ति सेठी
3. परम पारस गुरु रविदास	के. एन. उपाध्याय
4. गुरु नानक का रूहानी उपदेश	जनक पुरी
5. गुरु अर्जुन देव	महिन्दर सिंह जोशी
6. भाई गुरदास	महिन्दर सिंह जोशी
7. सन्त तुकाराम	चन्द्रावती राजवाडे
8. नाम-भक्ति : गोस्वामी तुलसीदास	के. एन. उपाध्याय, पंचानन उपाध्याय
9. मीरा : प्रेम-दीवानी	वीरेन्द्र कुमार सेठी
10. सन्त दादू दयाल	के. एन. उपाध्याय
11. सन्त पलटू	राजेन्द्र कुमार सेठी
12. सन्त चरनदास	टी. आर. शंगारी

13. सन्त दरिया (बिहार वाले) — के. एन. उपाध्याय
14. तुलसी साहिब — जनक पुरी, वीरेन्द्र कुमार सेठी
15. उपदेश राधास्वामी (स्वामी जी महाराज) — सहगल, शंगारी, 'ख़ाक', भण्डारी
16. साईं बुल्लेशाह — जनक पुरी, टी. आर. शंगारी
17. हज़रत सुलतान बाहू — कृपाल सिंह 'ख़ाक'
18. सरमद शहीद — टी. आर. शंगारी, पी. एस. 'आलम'
19. बोलै शेख़ फ़रीद — टी. आर. शंगारी

सतगुरुओं के विषय में

1. रूहानी डायरी, भाग 1 से 3 — राय साहिब मुंशीराम
2. धरती पर स्वर्ग — दरियाईलाल कपूर
3. अनमोल ख़ज़ाना — शान्ति सेठी
4. मेरा सतगुरु — जूलियन पी. जॉनसन

सन्तमत के सम्बन्ध में

1. नाम-सिद्धान्त — शंगारी, 'ख़ाक', भण्डारी, सहगल
2. सन्तमत विचार — टी. आर. शंगारी, कृपाल सिंह 'ख़ाक़'
3. सन्त-सन्देश — शान्ति सेठी
4. सन्त-समागम — दरियाईलाल कपूर
5. अमृत नाम — महिन्दर सिंह जोशी
6. अन्तर की आवाज़ — सी. डब्लयू . सेंडर्स
7. मार्ग की खोज में — फ़्लोरा ई. वुड
8. रामचरितमानस का सन्देश — एस. एम. प्रसाद
9. हंसा हीरा मोती चुगना — टी. आर. शंगारी
10. जपुजी साहिब — टी. आर. शंगारी
11. हउ जीवा नाम धिआए — हेक्टर एस्पॉण्डा डबिन
12. हक़-हलाल की कमाई — टी. आर. शंगारी
13. जिज्ञासुओं के लिए — टी. आर. शंगारी
14. विनती और प्रार्थना के शब्द — संकलित
15. अमृत वचन — संकलित

अन्य प्रकाशन

1. किताब-ए-मीरदाद — मिखाइल नईमी

To order books on the internet, please visit: www.rssb.org

प्यारे दर्शन दीजो आय,
तुम बिन रह्यो न जाय।।
जल बिन कमल, चंद बिन रजनी,
ऐसे तुम देख्यो बिन सजनी।।
आकुल व्याकुल फिरूं रैन दिन,
विरह कलेजा खाय।।
दिवस न भूख नींद नहिं रैना,
मुख से कथन न आवै बैनां।।
कहा करूँ कुछ कहत न आवै,
मिल कर तपत बुझाय।।
क्यों तरसाओ अंतरजामी,
आय मिलो किरपा कर स्वामी।।
मीरा दासी जनम जनम की,
परी तुमारे पांय।।

(मीरा बृहत्पदावली, पृ. 133)

Mira Prem Diwani
(Hindi)

ISBN 978-81-8256-265-3

HI061
HI-012-0 Mira Prem Diwani Rs. 11.00

मीरा प्रेम दीवानी

राधास्वामी सत्संग ब्यास